जागोरी की पत्रिका

अक्टूबर 2015-सितम्बर 2016

हम सबला

इस अंक में
कामकाजी महिलाओं
के हक़ और सवाल

हम सबला

अक्टूबर 2015-सितम्बर 2016

इस अंक में

हमारी बात	जुही	1
लेख		
कामकाजी महिलाओं के लिए आर्थिक साक्षरता	निर्मला बैनर्जी	2
भारत में महिलाओं का काम करने का अधिकारः सरकार की भूमिका	गायत्री शर्मा	5
सपनों में स्मार्ट और सुरक्षित शहर	संकलन	7
कोली कामगर औरतेंः उन्हें ज़िंदा तो रहने दो	नंदिता मंडल	10
प्रेम के परिश्रम की कोई पहचान नहीं	दीप्ति प्रिया मेहरोत्रा	12
आमने-सामने		
महिला मज़दूरों की बुलंद आवाज़	सुजाता घोटोस्कर	15
कानून		
असंगठित क्षेत्र की मज़दूर महिलाएं कहां करें शिकायत?	सुनीता ठाकुर	17
संवाद		
बाल देखरेख सुविधाः कामकाजी माता-पिता की एक अहम् ज़रूरत	नीलिमा श्रीवास्तव	19
आर्थिक जानकारी से मिली सशक्तता	ऐश्ली	21
अभियान		
महिलाओं की मांग-शौचालय	विभूति पटेल	23
सर्वव्यापी मातृत्व हक़ और बाल देखरेख प्रावधान	सेजल डांड	36
कविता		
चौपाल बोलती है / आजकल मैं मन का करती हूं	चित्रा देसाई	9/25
लड़की हूं मैं, गुड़िया नहीं	कमला भसीन	25
वजूद	लक्ष्मी	40
कहानी		
छाती तले का लावा	वीणा शिवपुरी	26
चौपाल		
कायदा तोड़ के एक दिन	जया	33
अन्त में	साबरा	40

संपादन एवं अनुवाद
जुही जैन

संपादन सहयोग
वीणा शिवपुरी (अनुवाद सहयोग)
अनामिका
सीमा श्रीवास्तव
शर्मीला भगत
गीता नम्बीशन

अनुवाद सहयोग
दीप्ति श्रीवास्तव
अनुपमा चिब
सुनीता ठाकुर

सलाहकार
जया श्रीवास्वत
विभूति पटेल
सुनीता धर

समन्वय
नीतू रौतेला

कवर्स फ़ोटो:
सभी फ़ोटो-साभारः *प्रदान*

डिजाइन:
यशवंत सिंह रावत

मुद्रणः गैलेक्सी
9958392130
rawatys2011@gmail.com

कॉपीराइट कानून के तहत 'हम सबला' प्रकाशन के सर्वाधिकार जागोरी के पास सुरक्षित हैं। लिखित अनुमति के लिए सम्पर्कः jagori@jagori.org

डिस्क्लेमरः इस प्रकाशन में शामिल लेखों में व्यक्त विचार और मत लेखकों के निजी हैं और जागोरी की आधिकारिक नीतियों और दृष्टिकोण को अनिवार्य रूप से नहीं दर्शाते। प्रकाशन में शामिल जानकारी के चयन पर अंतिम निर्णय संपादक-मंडल को होगा।

केवल सीमित वितरण के लिए

बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर
नई दिल्ली 110017
ई-मेलः humsabla.patrika@jagori.org
वेबसाइटः www.jagori.org
दूरभाषः 26691219, 26691220
हेल्पलाइनः 26692700

हमारी बात

"कामकाजी औरत"

अक्सर हमने कहते सुना है— "मेरी बीबी काम नहीं करती। बस घर संभालती है। थोड़ा और पूछो तो कुछ इस तरह के जवाब मिलते हैं, खाना बनाती है, माता-पिता-बच्चों की देखभाल करती है। नौकरी नहीं करती।"

दूसरी ओर एक 'नौकरी पेशा' महिला के हालात कुछ यूं बयान किए जाते हैं। "बीबी पैसे कमाती है। घर तो नौकरों के भरोसे चल रहा है।"

औरत के इन दोनों ही रूपों में जो साफ़ झलकती है वह है समाज की मानसिकता। एक उलाहना, एक शिकायत के लहजे में बयान होता अफ़सोस।

पर क्या कभी हमने एक घर संभालने वाली औरत और एक नौकरी पेशा औरत से यह जानने की कोशिश की है कि इन बातों पर उनका क्या नज़रिया है?

क्या सच में घर के अन्दर बिना वेतन लिए देखभाल, साफ़-सफ़ाई, खाना, पढ़ाई, हाट-बाज़ार और रिश्ते-नातों के ताने-बाने को संभालती औरत कोई भी काम नहीं करती?

क्या वास्तव में दफ़्तर, मिल या दुकान पर सुबह से शाम तक खटने वाली औरत अपने जीवन की बागडोर पूरी तरह से घरेलू कामगर के भरोसे छोड़कर एक सुकून की ज़िंदगी जी पाती है?

शायद नहीं? क्योंकि दोनों ही सूरतों में एक औरत को अनेकों समझौतों, दबाबों और खींचतान के बीच एक संतुलन बनाना पड़ता है। अपने हक़ों की बात तो दूर रही अपनी ख़्वाहिशों को भी ताक पर रखकर दूसरों की ज़रूरतों और उम्मीदों पर खरा उतरना पड़ता है। घर से बाहर निकलकर पैसे कमाकर लाने वाली कामकाजी औरत को भी अपनी कमाई इस्तेमाल करने के लिए सोचना पड़ता है। घर में दिन-रात जुटी औरत को भी हाथ में मिले पैसों का पाई-पाई हिसाब देना पड़ता है।

घर से बाहर की बात करें तो एक पुरुष प्रधान मानसिकता ग्रस्त माहौल में अपनी क़ाबलियत और अपनी निष्ठा साबित करने के लिए एक औरत को दोगुनी मेहनत करनी पड़ती है। साथ काम करने वाले पुरुष अक्सर सह कर्मचारी महिलाओं के बारे में एक राय कायम कर लेते हैं। वे उन्हें स्वच्छंद और आज़ाद ख़्याल मान लेते हैं। ऐसे में अपनी क्षमता, अपनी शिक्षा और मेहनत के बलबूते पर आगे बढ़ने पर भी उन्हें छींटाकशी और तानों का सामना करना पड़ता है।

दूसरी ओर घर के अन्दर रहकर घरेलू आधारित काम या फिर घर संभालने जैसे चौबीस घंटों उबाने व थकाने वाले काम की ज़िम्मेदारी उठाने वाली औरत को अक्सर बेकार और अनुपयोगी करार दिया जाता है। ये औरतें खुद भी अपराध-बोध से घिरकर यह मान बैठती हैं कि वे किसी काम की नहीं हैं क्योंकि वे घर में कोई पैसों का योगदान नहीं कर रही।

नारीवादियों ने हमेशा औरत के श्रम की क़ीमत से जुड़े पक्षों को विमर्श के केंद्र में रखा है। घर या बाहर दोनों ही स्थितियों में औरत की मेहनत को गरिमा और मूल्य देने की बात बार-बार उठाई गई है। उसे बतौर नागरिक, बतौर इंसान एक पहचान और एक दर्जा दिलाने की कोशिश मज़बूत की है।

हमसबला के इस अंक में आपको औरत के इसी विरोधाभास, इसी संघर्ष और गरिमा की जद्दोजेहद से रूबरू करा रहे हैं।

हमें उम्मीद है कि इस अंक में शामिल सभी पक्षों को जांचकर हम इस विषय पर एक व्यापक समझ बना पाएंगे।

—जुही

कामकाजी महिलाओं के लिए आर्थिक साक्षरता

निर्मला बैनर्जी

भारतीय रिज़र्व बैंक के अध्यक्ष, रघुराम राजन ने हाल ही में एक टिप्पणी की थी कि आर्थिक साक्षरता सभी के लिए स्कूली पाठ्यक्रम का हिस्सा होनी चाहिए। उन्होंने अपने इस विचार को बहुत ज़्यादा साफ़ नहीं किया, लेकिन मुझे लगता है कि वे हम सभी को यह समझाना चाहते हैं कि ताज़ा बजट में क्या-क्या टैक्स और रियायतें पेश की गई हैं। यह भी लगता है कि वह बैंक दरों में बदलाव के बुरे प्रभावों की ओर इशारा कर रहे हैं। या फिर इस संदर्भ में हमें यह समझाना चाहते हैं कि बैंक दर के क्या मायने होते हैं। मेरा मानना है कि इन बदलावों का असर हमारी व्यक्तिगत आमदनी/ख़र्चे पर भी हो सकता है मगर हम अक्सर इन घोषणाओं की ओर ध्यान नहीं देते।

हम में से अधिकतर महिलाएं अपनी आर्थिक कगार पर जीती हैं। हम डाकखानों में की गई बचतों की ब्याज दरों में कटौती जैसे किसी नीतिगत फ़ैसले के खिलाफ़ ही ध्यान देती हैं या उसका विरोध करती हैं क्योंकि वे हमारी व्यक्तिगत आय पर असर डालती हैं।

उदाहरण के लिए बंगलुरू में काम करने वाली फ़ैक्ट्री महिला श्रमिकों, (जो बहुत ज़्यादा पढ़ी लिखी नहीं हैं) ने यह तुरंत समझ लिया था कि ई.पी.एफ़ में जमा राशि को निकालने के बारे में नियमों को बदलने वाली नई नीति ऊपर से देखने में हानिकर तो नहीं लगती, लेकिन यह उनकी आर्थिक आज़ादी को कम कर सकती है। उन्होंने तुरंत इसके ख़िलाफ़ प्रदर्शन किया क्योंकि उनकी ये राशि ही उन्हें रोज़गार बाज़ार में होने वाली उठापटक से निपटने में मदद करती है। मुझे नहीं लगता कि वित्त मंत्री ने खुद भी इस बारे में कोई विचार किया होगा कि विभिन्न प्रकार के श्रमिक समूहों पर इस तरह के नीतिगत बदलावों का कैसा असर पड़ेगा।

इस प्रकार की वित्तीय साक्षरता बड़े शहरी मध्यम वर्गों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है और वित्त मीडिया उनकी इन मांगों को बड़े पैमाने पर पूरा करने का काम करता है। लेकिन एक औसत कामकाजी महिला के लिए, आर्थिक साक्षरता का अर्थ होना चाहिए कि उसमें उसकी अपनी आर्थिक स्थिति के बारे में समझ बनाने पर ज़ोर दिया जाए। शायद इसका शेयर बाज़ार से भी कुछ हद तक सीधा संबंध है। ये महिलाएं जानती हैं कि पिछले दो दशकों में, उनके लिए अपने गांवों में ही रोज़गार पाना मुश्किल होता जा रहा है।

एक कड़वी सच्चाई

चाहे वह कृषि मज़दूरी हो या फिर स्थानीय बाज़ार को सेवाएं देने वाले लघु उद्योग; उनमें से ज़्यादा से ज़्यादा काम की तलाश में दूर-दराज के इलाकों में जाने के लिए मजबूर हो जाती हैं। ग्रामीण परिवारों को आजीविका प्रदान करने वाले परंपरागत ग्रामीण व्यवसाय तेज़ी से गायब होते जा रहे हैं, जिसकी वजह से पुरुष श्रमिक-किसान और कारीगर काम की तलाश में प्रवास के लिए मजबूर हो रहे हैं। वह काम भी अस्थाई और कुछ समय के लिए ही उन्हें मिलता है। इस नए पुरुष प्रवास चलन का अर्थ है कि पुरुषों की आमदनी अनिश्चित और अस्थिर होती जा रही है। तथा ऐसे में घरेलू जीविका बहुत हद तक अन्य श्रमिकों पर निर्भर हो जाती है जो ज़्यादातर परिवार की महिलाएं होती हैं। इस सूरत में इन महिलाओं के कंधों पर-घरेलू कामकाज, बच्चों की देखभाल और पालन-पोषण के साथ-साथ पुरुषों की अस्थिर और अनिश्चित आमदनी की स्थिति को संतुलित बनाए रखने का दबाव आ जाता है। कृषि अर्थव्यवस्था में सुधार अथवा कारीगरी से जुड़े उद्योगों को फिर से मज़बूत करने के लिए नीतिगत स्तर पर कुछ प्रयास तो किए गए हैं। लेकिन न तो हमारे श्रमिकों को इसकी जानकारी दी जाती है और न ही अर्थव्यवस्था के वैश्विक पटल पर अपनी जगह बनाने में उनका हुनर विकास किया जाता है।

विडंबना यह भी है कि, अपनी आर्थिक असाक्षरता की वजह से अभी भी भारतीय परिवार दीवारों पर लिखी इबारतों को पढ़ने से वंचित होते हैं। पर अब हम यह सोचकर नहीं बैठ सकते कि शादी महिलाओं के लिए पूरे समय का 'रोज़गार' हो सकता है। हमारे समाज में आज

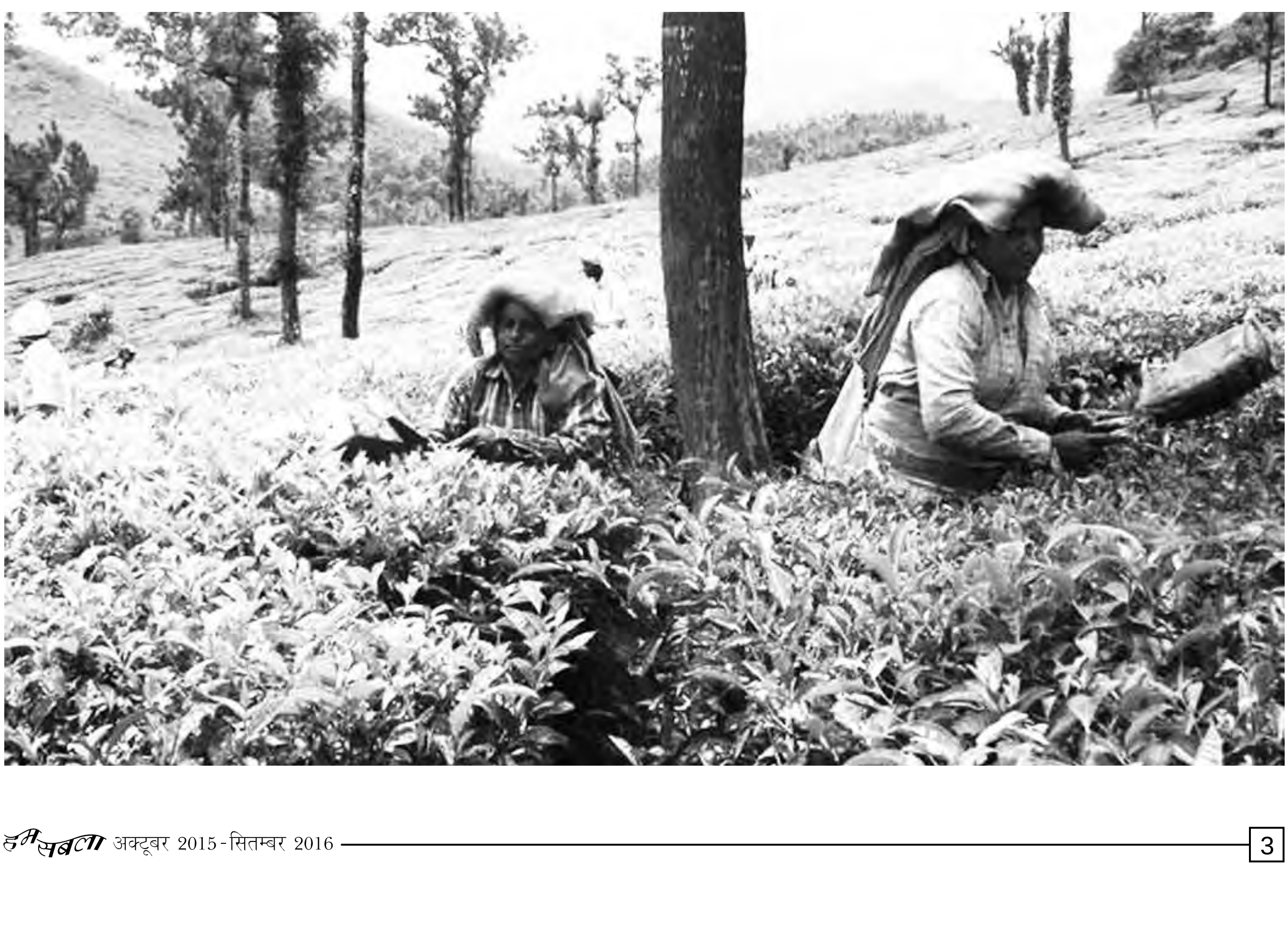

पत्तों की साफ़-सफ़ाई में जुटी कामगार

भी बेटियों की शादी उनकी स्कूली शिक्षा पूरी होने और/या किसी प्रकार का बाज़ार केंद्रित हुनर सीखने से पहले ही कर दी जाती है। लेकिन उनका यह आम दृष्टिकोण कि “पुरुष कमाने वाला व औरत पालन-पोषण करने वाली होती है” सही नहीं होता। सच्चाई यह है कि शादी के बाद, बेटियां कम उम्र में न केवल वैवाहिक जीवन के बोझ से जूझती रहती हैं बल्कि उन पर अपने परिवार का संतुलन बनाए रखने के लिए अतिरिक्त आमदनी जुटाने का बोझ भी आ पड़ता है।

ऐसी स्थितियों में घिर जाने पर भी, महिलाएं अपने आसपास की अर्थव्यवस्था के विभिन्न पक्षों से अनजान नहीं रहतीं। जहां तक संभव होता है वे अपने नियोक्ताओं को चुनौती देने की कोशिश करती हैं। वे यह भी जानती हैं कि उन्हें अपनी साथी कामगर महिलाओं के साथ मज़बूत गठबंधन बनाने की ज़रूरत होती है।

श्रमिक संगठनों में भी संघर्ष

लेकिन कम योग्यता वाली इन महिलाओं को रोज़गार दूरदराज़ के इलाकों में ही मिल पाते हैं, जिसके कारण वे अपने साथियों के बारे में मुश्किल से ही जान पाती हैं। ऐसे हालातों में उनके साथ एक मज़बूत संगठन बना पाना उनके लिए कठिन हो जाता है। एक लंबे समय तक, स्थापित व्यापार यूनियनों ने महिला श्रमिकों की अनदेखी की है, खासतौर से तब जब वे अनौपचारिक अनुबंधों में काम कर रही होती होती थीं। उदारवादी अर्थव्यवस्था के पिछले कुछ सालों में, ये स्थापित व्यापार यूनियनें नियोक्ताओं की ओर से पड़ने वाले दबावों के कारण लगातार कमज़ोर होती जा रही हैं। अपनी ताकत के बेहतर प्रदर्शन के लिए ये यूनियनें अपने सदस्यों की संख्या बढ़ाने की कोशिश कर रही हैं और अपने साथ जोड़ने के लिए अनेक अनौपचारिक व्यवसायों से महिला कामगरों की तलाश करने लगी हैं। हालांकि, प्रबंधन समितियों के साथ अपने मोलभाव में, यूनियनों को अपनी कमतरी आंकने और श्रमिकों की महिला केंद्रित मांगों को नज़रअंदाज़ करने की आदतों को बदलना होगा।

मुन्नार में चाय बागानों की महिला श्रमिकों ने अपनी एक यूनियन बनाई और प्रबंधकों से काम की बेहतर स्थितियों की मांग करते हुए सफल संघर्ष किया।

आज के भारत में, कोई भी महिला श्रमिकों को एक समरूप, एकल इकाई के रूप में देखकर बात नहीं कर सकता है। आर्थिक उदारवाद के शुरूआती दौर से, शहरी मध्यमवर्गीय परिवारों ने अपनी उन क्षमताओं को पहचान लिया था जिनके रहते इस वर्ग के पढ़े-लिखे युवा वैश्विक अर्थव्यवस्था में बड़ी आमदनी वाले रोज़गारों में जगह बना सकती थे। उन्होंने तुरंत अपनी बेटियों को शादी की परंपरागत बंदिश से आज़ाद कर दिया, और शादी की “सही” उम्र को स्वीकार करते हुए उन्हें अपने रोज़गार की दौड़ में आगे बढ़ने दिया।

भारत के पास आज उच्च शिक्षा प्राप्त, उच्च रोज़गार प्राप्त महिलाओं की पूरी सशक्त सेना है जो उन महिला श्रमिकों की स्थिति से कमोबेश समानताएं रखती हैं जिनके बारे में हम ऊपर बात कर रहे थे। भारतीय समाज की इस बड़ी आर्थिक सच्चाई को मुख्यधारा में शामिल करने के लिए हमें विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले अर्थशास्त्र और वित्तीय पाठ्यक्रमों की भी समीक्षा करने की ज़रूरत है। अगर हम इस विषय पर अभी भी ध्यान नहीं देंगे तो हमारा पचास प्रतिशत पढ़ा-लिखा नागरिक वर्ग आर्थिक रूप से अनपढ़ ही बना रह जाएगा।

निर्मला बैनर्जी, *शिक्षिका व अकादमिक हैं।*

महिला कामगार का एक समूह

भारत में महिलाओं का काम करने का अधिकार: सरकार की भूमिका

गायत्री शर्मा

भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी सभी विकासशील देशों की तुलना में अत्यंत निम्न है। यहां तक कि बंगलादेश, नेपाल व श्रीलंका भी हमसे आगे हैं। हालांकि रोज़गार बाज़ार में प्रवेश कर रही औरतों की संख्या बढ़ रही है, लेकिन श्रमशक्ति में उनका प्रतिशत घटा है।

असमान वेतन, गर्भावस्था में काम से हटाना, कार्यस्थल पर प्रतिकूल माहौल आदि कारण उन्हें काम करने के अधिकार से वंचित रखते हैं। साथ ही यौन उत्पीड़न, जेंडर पूर्वाग्रह भी महत्वपूर्ण कारण हैं। अनेक स्त्रियां बताती हैं कि काम पर रखने से पहले उनसे शादी और बच्चों के जन्म की योजना के विषय में पूछा जाता है। इस तरह के सवाल पुरुष उम्मीदवारों से नहीं किए जाते। यह भेदभाव सरकार व गैर सरकारी सभी संस्थानों में पाया जाता है।

भारत ने 1993 में *सीडॉ समझौते* (कन्वेंशन ऑन द एलिमिनेशन ऑफ़ ऑल फ़ॉर्म्स ऑफ़ डिस्क्रिमिनेशन) को अपना समर्थन दिया है। इस समझौते की धारा 2(ई) के तहत सभी देशों की सरकारों को औरतों के ख़िलाफ़ किसी भी व्यक्ति, संस्था या उद्यम द्वारा किए जाने वाले भेदभाव को दूर करने के लिए उचित कदम उठाने को कहा गया है।

भारत का संविधान अपने *अनुच्छेद 14, 15 तथा 16 में मूलभूत अधिकार* के रूप में समानता की गारंटी देता है।

अनुच्छेद 14 में क़ानून की दृष्टि में समानता तथा क़ानूनी सुरक्षा की बात की गई है। अनुच्छेद 15 में महिलाओं के

लिए विशेष प्रावधान बनाने की छूट दी गई है। अनुच्छेद 16 सभी सार्वजनिक रोज़गार मामलों में समान अवसर देता है। संविधान से मिली समानता की गारंटी के चलते कार्यस्थल पर महिलाओं के लिए निम्न सुरक्षात्मक क़ानून बनाए गए हैं।

मातृत्व लाभ क़ानून 1961 में बना जो सार्वजनिक तथा निजी दोनों संस्थानों में कामकाजी स्त्रियों को मातृत्व लाभ देने के मुद्दे से जुड़ा है। इसके तहत महिला को 12 सप्ताह (अब इसे 26 सप्ताह बनाने का प्रस्ताव है) की सवेतन छुट्टी दी जाती है। छह सप्ताह बच्चे के जन्म से पहले तथा छह सप्ताह प्रसव के बाद। यदि गर्भपात हो जाता है तब भी सवेतन छुट्टी दी जानी चाहिए। इस क़ानून के उल्लंघन पर उद्यम के मालिक को कारावास की सजा हो सकती है।

समान पारिश्रमिक क़ानून 1976, एक या एक जैसे कार्य के लिए स्त्रियों व पुरुषों को समान वेतन देने का निर्देश देता है। इस क़ानून के उल्लंघनकर्ता के लिए सज़ा का प्रावधान भी है। *न्यूनतम मज़दूरी क़ानून 1948* लिंग के आधार पर भेदभाव की आज्ञा नहीं देता।

दुर्भाग्य से मातृत्व लाभ क़ानून तथा समान पारिश्रमिक क़ानून शायद ही कभी लागू किए जाते हैं। समान पारिश्रमिक क़ानून के तहत दर्ज होने वाली शिकायतें भी बहुत कम होती हैं। लगभग सभी उद्यमों में स्त्रियों व पुरुषों के पारिश्रमिक में भेदभाव मौजूद है। पितृसत्तात्मक संस्कृति के कारण औरतों के लिए काम के हालात प्रायः प्रतिकूल होते हैं। उदाहरण के लिए बहुत कम कार्यस्थलों पर बच्चों के लिए क्रैश सुविधा उपलब्ध होती है।

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध एवं क्षतिपूर्ति) क़ानून 19 दिसंबर 2013 को लागू हुआ। इस क़ानून का विशेष बल हिंसा के दोषी का सज़ा दिलवाने पर नहीं है बल्कि यौन उत्पीड़न की रोकथाम, उसका निषेध तथा उत्पीड़न की शिकार स्त्री की क्षतिपूर्ति करने पर अधिक है।

सरकार की भूमिका

यौन उत्पीड़न से सुरक्षा तथा सम्मान से काम करने के लिए अधिकार सार्वभौमिक रूप से मान्य मानवाधिकार है जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय विधि व भारतीय संविधान भी मान्यता देते हैं। मूलभूत अधिकारों का हनन होने पर सभी नागरिकों को संवैधानिक उपचार प्राप्ति का अधिकार भी है।

धीरे-धीरे भारत में भी महिलाएं अपने काम करने के अधिकार पर ज़ोर दे रही हैं। भारतीय विदेश सेवा की शर्तों के अनुसार महिला अधिकारी को शादी करने के लिए सरकारी इजाज़त लेने के प्रावधान का अदालत में चुनौती दी गई है।

इसी प्रकार एक और मामले में उच्चतम न्यायालय ने 'मेकअप आर्टिस्ट एंड हेयर असोसिएशन' के एक नियम को निरस्त करते हुए महिलाओं के लिए सदस्यता का रास्ता खोल दिया है।

यह सभी उदाहरण सरकारी नियमों से जुड़े थे जहां न्याय पाना तुलनात्मक रूप से आसान था, परंतु निजी उद्योगों, क़ानूनी कम्पनियों सहित पूरे निजी क्षेत्र को इसके प्रति जवाबदेय बनाना ज़रूरी है ताकि महिलाएं श्रमशक्ति से बाहर न धकेल दी जाएं।

गायत्री शर्मा, *वकील व महिला अधिकार कार्यकर्ता हैं।*

सपनों में स्मार्ट और सुरक्षित शहर

शहरों की सार्वजनिक जगहों पर औरतों के साथ होने वाली हिंसा विश्वव्यापी है। अक्सर हिंसा के अनुभव औरतों के रहने व काम की जगह, आने-जाने के साधन, समय और सुविधाओं से जुड़े होते हैं। आधी आबादी व शहरी नागरिक होने के नाते लड़कियों एवं औरतों का समुदाय, सड़क बाज़ार और शहर पर अधिकार होता है। पर जब उन्हें ये अधिकार नहीं मिल पाता तब उनके जीवन में रुकावटें आने लगती हैं। सार्वजनिक जगहों पर लड़कियां और औरतें बुनियादी सुविधाओं जैसे रोशनी, फुटपाथ, शौचालय आदि की कमी के कारण जीवन में पूरी तरह भागीदारी नहीं निभा पाती हैं। इन सुविधाओं से जुड़ी असुरक्षा के कारण लड़कियां व औरतें सामुदायिक जीवन में बतौर नागरिक योगदान नहीं दे पातीं। इन जगहों पर सुरक्षा की कमी से एवं लड़कियों की ज़िंदगी पर नकारात्मक असर पड़ता है। असुरक्षित माहौल और यातायात के साधनों की कमी के चलते वे अपने काम, पढ़ाई, मौज-मस्ती और मौकों से वंचित होती हैं।

दिल्ली में पिछले सालों में हुए निर्भया व ऊबर कैब रेप जैसे हादसे बयां करते हैं कि लड़कियों व औरतों के साथ हिंसा और असुरक्षा के मामले काफ़ी संख्या में दर्ज हुए हैं। दोनों ही मामलों में पाया गया था कि उनके साथ सार्वजनिक जगह और वाहनों में हिंसा हुई थी। इन घटनाओं को लोगों ने हल्के में नहीं लिया। रोष और प्रतिरोध के स्वर हर कोने से उभरे ये स्पष्ट हो गया कि हिंसा सिर्फ "औरतों का मुदद्ा नहीं है।" महिला आंदोलन में लड़कियों व औरतों पर होने वाली हिंसा को खत्म करने के लिए काफ़ी सालों से सतत प्रयास किए जा रहे हैं। दिल्ली में *जागोरी* द्वारा *सुरक्षित दिल्ली अभियान* कार्य के दौरान महिलाओं एवं लड़कियों के लिए सम्मिलित व सुरक्षित शहर परियोजना के तहत महिलाओं एवं युवाओं के साथ सार्वजनिक स्थलों पर महिला सुरक्षा को लेकर एक लम्बे अर्से से विधिवत काम किया गया है।

सरकार की कोशिश

सरकार भी अपने सरोकार को समझ रही है। *जागोरी* के प्रयासों और हस्तक्षेप के कारण यह मुद्दा सरकार की नज़र में भी आया है। ये पिछले दस सालों में सार्वजनिक जगहों पर होने वाली हिंसा की समाप्ति और शहरों को सुरक्षित बनाने की कोशिशें अब कार्रवाई में तब्दील होती नज़र आ

कार्यशाला का एक दृश्य

रही हैं। औरतों की सुरक्षा और सशक्तिकरण को लेकर दिल्ली सरकार सबसे ज़्यादा संवेदनशील है। आइए इस दौरान उठाए गए कुछ कदमों के बारे में जानें।

डी.टी.सी. ने कई रूटों पर *महिला स्पेशल बसें* लगाई हैं। अब डी.टी.सी. बसों में 200 सीसीटीवी कैमेरे व चार हज़ार मार्शल भी तैनात हुए हैं। डी.टी.सी. में महिला चालकों की भी भर्ती हुई। इसके अलावा महिला ऑटो चालक व महिला टैक्सी ड्राईवर कई राज्यों में सेवा प्रदान कर रहे हैं। राजधानी क्षेत्र की सुरक्षा के लिए निगरानी प्रणाली और दिल्ली के कुल 42 हज़ार अंधेरे स्थानों पर रोशनी की व्यवस्था की जाएगी।

महिला सुरक्षा के लिए प्रयास

महिला सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए महिलाओं के विरुद्ध अपराध की जांच के लिए *जांच आयोग* बनाया गया है। यह नोटिफिकेशन भी जारी हुआ है कि फ़रवरी 2013 के बाद आने वाले यौन हिंसा, स्टॉकिंग व अन्य हिंसा से जुड़े मामलों की पूरी जांच की जाएगी और सरकार को सुझाव दिए जाएंगे कि सरकार इन पर क्या कार्रवाई करे। संगीन यौन अपराधियों की ऑनलाईन जानकारी दी जाएगी। इनमें 18 साल से कम उम्र के अपराधी भी शामिल होंगे।

चूंकि धन का अभाव था इसलिए पुलिस महकमें में 33 फीसदी महिलाओं की भर्ती नहीं की जा सकी है। इसलिए राजधानी की बेहतर पुलिस निगरानी की बात को ध्यान में रखते हुए केंद्र सरकार ने अपने सालाना बज़ट से पुलिस फंड में आबंटन को बढ़ाया है।

औरतों की सुरक्षा को मद्देनज़र रखते हुए दिल्ली पुलिस ने प्रत्येक थाने में *महिला पुलिस कर्मी की तैनाती,* महिला *हेल्प डेस्क की स्थापना,* संवेदनशील व सुनसान इलाकों में *सीसीटीवी कैमरा* व रात में इन्हीं इलाकों में पुलिस बलों की मौजूदगी सुनिश्चित करने पर ज़ोर दिया है। *'हिम्मत एप'* सहित तीन हैल्पलाइन सेवाओं को भी जारी किया गया है कैब कंपनियों व कॉरपोरेट को दिए दिशा-निर्देशों में रात्रिकालीन कैब में सुरक्षाकर्मी की मौजूदगी सुनिश्चित करने की बात की गई है। *महिला पी.सी.आर. वैन की शुरुआत,* पी.सी.आर वैन में महिला पुलिस कर्मी की तैनाती हुई है। अब औरतें व लड़कियां अब घर बैठे हिंसा व सुरक्षा के मामलों में एफ.आई.आर.दर्ज करा सकती हैं। महिला सुरक्षा 181, 1090, चाईल्ड हैल्पलाइन 1098 व 11 ज़िलों के लिये 22 गाड़ियां लगाई गई हैं।

क़ानूनी मदद

यौन उत्पीड़न, कार्यस्थल में यौन उत्पीड़न, पोक्सो, एससीएसटी एक्ट में संशोधन किया गया है। दलित हिंसा मामलों में 60 दिनों में चार्जशीट भेजने का प्रावधान किया गया है। दुष्कर्म पीड़ित, दलित आदिवासी को 8.25 लाख तक की राशि की घोषणा की गई। इस राशि में पीड़ित के परिवार को 7 दिनों में राहत जिसमें खाना, पानी, कपड़े, आवास व इलाज शामिल हैं। समाज कल्याण योजनाओं के लिए युवाओं को बेहतर प्रशिक्षण, बेहतर कौशल, अनुसुचित जाति व जनजाति वर्ग के छात्रों को स्कॉलरशिप की सुविधा की भी घोषणा की गई है।

सार्वजनिक स्थलों तक औरतों की पहुंच बढ़ाने के लिए *सम-विषम यातायात प्रणाली* लागू की गई। शहर में परिवहन प्रणाली में और औरतों की सुरक्षा के इंतज़ामातों की गुंजाईश देखते हुए औरतों को छूट दी गई है ताकि महिलाओं के लिए कार्यस्थल एवं सार्वजनिक स्थलों तक आवागमन सुगम बन सके। साथ ही दिल्ली में काम करने व पढ़ाई के लिए आई विद्यार्थी एवं कामकाजी औरतों के लिए आवास उपलब्ध कराने के लिए 50 महिलाओं की क्षमता वाला छात्रावास बनाने की योजना भी है।

सुरक्षित मातृत्व के लिए चार्टर तैयार हुआ है। जिसमें एक जच्चा एवं एक बच्चा के लिए एक बिस्तर आरक्षित हुआ है। मौजूदा सरकारी अस्पतालों को रिमॉडल किए जाने और इनके बोझ को कम करने के लिए 150 पोली क्लीनिक और 1000 मोहल्ला क्लीनिक बनाने की घोषणा हुई है। इसमें से 21 मोहल्ला क्लीनिक शुरू हुए हैं। अभी राज्य में पांच वन स्टॉप काडसिस सेंटर काम कर रहे हैं। इसके अलावा अब दिल्ली के मेडिकल अस्पताल में फ़ोन पर समय लेकर चिकित्सा के लिए जाया जा सकता है।

खुले में *शौच मुक्त अभियान* शुरू किया गया है। इस अभियान के तहत यूनिसेफ़ लोगों की आर्थिक मदद कर रही है। 2019 तक शौच मुक्त समुदाय बनाने का लक्ष्य साधा गया है।

विडम्बना यह है कि औरतें और लड़कियां चाहे कामकाजी हों या घरेलू उनकी आवाजाही पर आज भी समाज में प्रश्न उठ रहे हैं। इसीलिए औरतों को योजनाओं की जितनी ज़रूरत है, उतनी ही ज़रूरत सामाजिक सुरक्षा की भी है। पर यह सुरक्षा केवल पैनिक बटन, सीसीटीवी कैमरे, महिला पुलिस थाने, महिला स्पेशल बस या महिला हेल्पलाइन या आयोग तक ही सीमित नहीं की जा सकती। औरतों की पूरी सुरक्षा के लिए सामाजिक, आधारभूत और मानसिक सभी स्तरों पर नियमित प्रयास करने होंगे।

सरिता *द्वारा संकलित*

सरिता जागोरी में काम करती हैं।

चौपाल बोलती है

चित्रा देसाई

मेरे गांव की चौपाल बोलती है—
बारात आई इस गांव में
पगड़ी को पांवों में रख
कितनी बार मनाया
रूठे रिश्तों को।

मिठाई की परातों से
मोतीचूर के लड्डू चुराए,
बन्ने की खबरें
उड़ती-उड़ती
बन्नी के कानों तक पहुंची।

बस की छत पर
सन्दूकों में
कितनी फ़सलें क़ैद हो गईं।

लौटी जब बन्नी
ख़ाली-ख़ाली
पंच सब जमा हो गए—
पूरे गांव का सलाह-मशवरा—
कुछ और फ़सल
सन्दूकों में बन्द
चौपाल से विदा हो गई।

फिर लौटी बन्नी
भरी गोद
भरे सपने
पंचायत को आगाह कर—
इस बार नहीं विदाई
न खेतों की
न फ़सलों की
बिटिया है मेरी
भरपूर कमाई।

उसने बोई
सपनों की फ़सल
जो खलिहानों में फैल गई
चौपाल से उठी गूंज
गांव-कस्बा
नगर-महानगर
हर गलियारे में फैल गई—

बिब्बी की बेटी बड़ी हो गई
आसमान में फैल गई।

चित्रा देसाई, *कवयित्री, शिक्षिका व वकील हैं।*

मच्छी बाज़ार की एक झलक

कोली कामगर औरतें: उन्हें ज़िंदा तो रहने दो

नंदिता मंडल

कोली समुदाय के लोग आज के महानगर मुंबई के मूल निवासी हैं। पारम्परिक रूप से शाम को लगने वाले मच्छी बाज़ार की जान होती है आभूषणों और गजरों से सजी कोली औरतें।

समुद्र में नावें लेकर जाने वाले मछुआरों की यात्रा की तैयारी में ये औरतें अहम भूमिका निभाती हैं। मछली पकड़ने के जाल और कांटे की मरम्मत से लेकर मछुआरों के लिए अनेक दिनों के खाने का इंतज़ाम भी करती हैं। जग मछुआरे लौटते हैं तो मछलियों की छंटाई, सफ़ाई उन्हें सुखाना और ताज़ी मछलियां बाज़ार ले जाकर बेचना, सब कुछ उन्हीं के ज़िम्मे होता है। उनका रोज़गार इस बात पर निर्भर करता है मछुआरे कितना माल लाते हैं जो बिल्कुल अनिश्चित होता है।

इस पूरे व्यवसाय की खास बात यह है कि समुद्र में नावें ले जाने और मछली पकड़ने की कला पीढ़ी-दर-पीढ़ी परिवार के सिर्फ़ लड़कों को सिखाई जाती है। औरतें व लड़कियां तट पर रहकर घर-बार और बाज़ार संभालती हैं। ख़तरनाक और अनिश्चित समुद्री यात्रा झेलने वाले मछुआरों की छवि मर्दानगी और बहादुरी से जुड़ी होती है। जबकि उसे संभव बनाने के लिए पृष्ठभूमि में रहकर काम करने वाली मछुआरिनों का काम घरेलू (मुफ़्त) ही रह जाता है। इसलिए कार्य और कार्यस्थल को दोबारा इस तरह परिभाषित करने की आवश्यकता है कि जीने के लिए श्रम करने वाले सभी लोग इसमें शामिल हो सकें विशेषतः कोली कामगर औरतें जो जीवन भर समुद्रतट पर मेहनत करती रहती हैं।

हालात से जूझती मछुआरिनें

ये मछुआरिनें जब मछली लेकर बेचने बाज़ार पहुंचती हैं तो इन्हें सरकारी अत्याचार झेलना पड़ता है। पूरी मुंबई में नगरपालिका के 61 मच्छी बाज़ार चल रहे हैं। उन बाज़ारों की दुर्दशा को देखते हुए उन्हें कोली औरतों का कार्यस्थल कहना कठिन हो जाता है। आमतौर पर मच्छी बाज़ार के लिए दूर-दराज़ की कोई ज़मीन आबंटित की जाती है। वहां अपने लिए एक कोना हासिल करना भी किसी लड़ाई से कम नहीं। तड़कती हुई धूप में या किसी अंधेरी जगह के उस कोने के लिए उन्हें बाज़ार समिति को पैसे देने पड़ते हैं जहां सारा दिन बैठकर वे ग्राहकों से निपटती हैं। वहां की सफ़ाई की ज़िम्मेदारी भी इन्हें ही उठानी पड़ती है।

जो औरतें पास के मुहल्लों में सड़क किनारे मछली बेचती हैं उन्हें नगरपालिका और पुलिस वालों का कहर झेलना पड़ता है। उनका माल ज़ब्त कर लेना उस जगह से

हटा देना या फिर पैसा वसूल करना रोज़मर्रा की बात है। अनेक दिन व्यवसाय करने के बजाए ये अपना माल वापस पाने के लिए नगरपालिका के चक्कर काटती हैं ज़ाहिर है उस दिन कोई कमाई नहीं होती।

इस पूरे परिदृश्य की सबसे बड़ी ज़रूरत है कि बाज़ार समिति में उनकी आवाज़, उनका प्रतिनिधित्व हो। सही जगह पर उनके मुद्दे उठाकर उन्हें सहूलियतें दिलवाई जाएं। साथ ही फुटपाथ विक्रेताओं के संगठन कोली औरतों को अपने साथ जोड़ें।

आगे का रास्ता

वैसे तो पुराने समय से कोली समुदाय की आपसी समस्याओं को सुलझाने के लिए उनकी अपनी 'जमात' है परन्तु यहां भी मर्द ही 'पाटिल' या 'पंच' का ओहदा संभालते हैं। मुंबई के सबसे पुरानी कोलीवाड़ा जमात ने सन 2012 में दो औरतों को पंच के रूप में शामिल किया। उन दोनों में से सिर्फ़ एक ही इस पेशे से जुड़ी है और समस्याओं से वाकिफ़ है जबकि दूसरी सदस्या पढ़ी-लिखी नौकरीपेशा है। यह कैसा प्रतिनिधित्व है?

कोली औरतों ने यह भी बताया कि पुरुष मछुआरे जो नावों के मालिक भी होते हैं प्रायः अपने फ़ायदे के मुद्दे ही उठाते हैं, जैसे डीज़ल और बर्फ़ की कीमतें, तटवर्ती नियम-क़ानून, मछली पकड़ने के सामान का बीमा और समुद्री सीमा पार करने पर आने वाली समस्याएं। अनेक बार मुंबई के आज़ाद मैदान में कोली औरतों का जमावड़ा लगता है, नारे लगाए जाते हैं लेकिन हमेशा अपने मर्दों के समर्थन में अपने लिए नहीं। कहां है कोली महिला कामगर?

मुंबई के तीव्र गति से हो रहे शहरीकरण ने भी उनकी समस्याएं बढ़ाई हैं। परम्परागत रूप से कोली समुदाय के मर्द चूंकि अनिश्चित परिस्थितियों में समुद्री यात्रा पर रहते

मछुआरा दल

थे, तटीय सम्पत्ति औरतों के नाम होती थी। सत्तर के दशक से जब सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों ने उद्योग लगाने के लिए तटवर्ती ज़मीन खरीदनी शुरू की और पश्चिमी छोर पर बड़े रिहायशी 'टावर' बनाए जाने लगे तथा ज़मीनों के बदले मुआवज़ा व नौकरियां मिलने लगी तो कोली मर्दों ने फौरन ज़मीनें अपने नाम करवा ली। यानी कोली औरतों पर तीन तरफ़ा मान पड़ी। ना उनके पास ज़मीन रही, न पैसा मिला और वर्षाकाल में मछलियों का काम न रहने पर वे अपनी ज़मीन पर जो सब्ज़ियां और फसलें उगा लेती थीं, उससे भी हाथ धोना पड़ा। अब उनके लिए सारे साल चूल्हा जलाए रखना भी भारी पड़ने लगा है। अनेक कोली युवा मुआवज़ा या नौकरी मिलने पर परिवार से अलग कहीं और बस जाते हैं।

समुद्रतट पर बन रही आलीशान इमारतों, उद्योग धंधों और धोखेबाज़ बिल्डरों के चलते कोली समाज की औरतों का जीवन दूभर हो रहा है।

रोज़गार-उत्तरजीविका-चुनौतियां और आवश्यकताएं!!
उन्हें ज़िंदा तो रहने दो!!!

नंदिता मंडल, *मछली कामगर महिलाओं के मुद्दों से जुड़ी हैं।*

श्रद्धांजलि

तृप्ति शाह, सहियर वडोदरा से जुड़ी मानव अधिकार और पर्यावरण कार्यकर्ता थीं जिन्होने बालिका शिशु, महिला हिंसा, दलित और हाशिए पर रहने वाले अरक्षित वर्गों, किसानों, साम्प्रदायिक अलगाव और सशक्तिकरण जैसे अनेक मुद्दों पर सतत काम किया है।

दविंदर कौर, सहेली संस्था के साथ एक लंबे अरसे से जुड़ी रहीं। उन्होंने महिला आंदोलन से जुड़े अनेकों मुद्दों पर अपनी समझ और नारीवादी छाप छोड़ी।

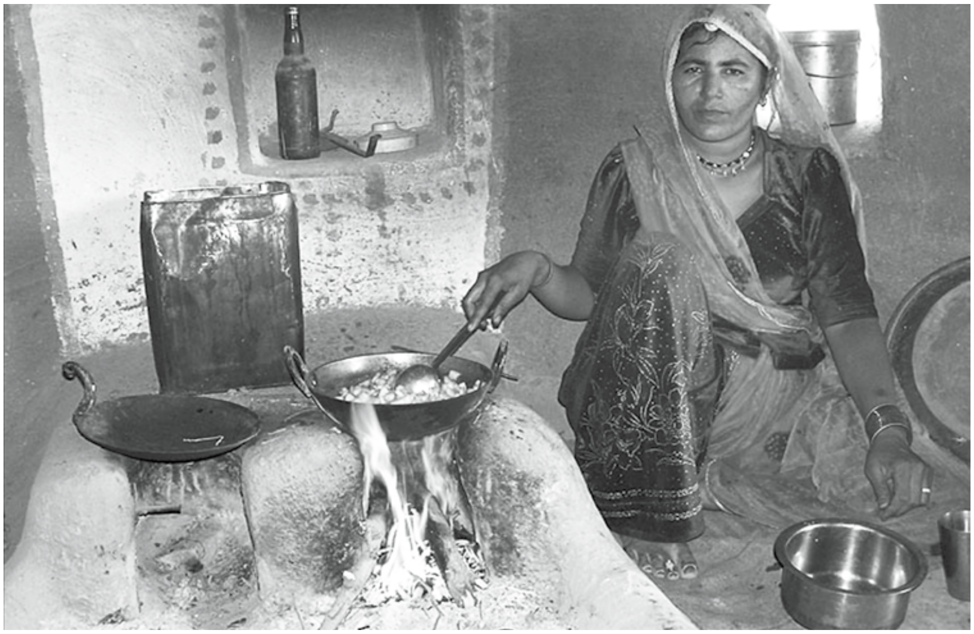

प्रेम के परिश्रम की कोई पहचान नहीं

दीप्ति प्रिया मेहरोत्रा

इसमें गलत क्या है अगर कोई औरत अपने घर का काम स्वयं करती है तो खासतौर पर तब जब वह अपनी मर्ज़ी से ऐसा करती है, और इसमें उसे खुशी मिलती है?

अगर प्रेम विवाह में पुरुष और स्त्री के बीच कामकाज का बंटवारा इतना असमान है, तो माता-पिता द्वारा तय किए गए विवाह में तो यह असमानता और भी ज़्यादा होगी। इन दोनों ही परिस्थितियों में महिलाओं को हमेशा डर का सामना करना पड़ता है। अस्वीकृति और आलोचना का डर अपमानित होने का डर, गाली-गलौज, हिंसा, और छोड़ दिए जाने का डर।

छब्बीस साल की परमिंदर को मुकेश से प्यार हो गया। दोनों के निम्न-मध्यमवर्गीय परिवार वाले इस रिश्ते के ख़िलाफ़ थे। परन्तु दोनों ने शादी कर ली। परमिंदर के सास-ससुर उससे यह अपेक्षा रखते हैं कि वह घर की झाड़-पोंछ करे, बर्तन मांजें, और खाना बनाए। परमिंदर सुबह नौ बजे नौकरी के लिए निकलती है। उसने मदद के लिए एक कामगर रख ली जो घर के काम में उसका हाथ बंटाए। पर सास ने कामगर के हाथ की बनाई कोई भी चीज़ खाने से इंकार कर दिया। मुकेश कहता है "तुम्हें मेरे माता-पिता की सेवा करनी चाहिए।" परमिंदर सोचती है, "यह शादी से पहले तो ऐसा नहीं था, इतना कैसे बदल गया?" और मुकेश उसकी मदद करे ऐसा तो हो ही नहीं सकता।

काम का असमान बंटवारा

यह एक सामाजिक सच है कि महिलाएं और महिलाओं में भी वो जो सबसे निर्बल है वही घर का अधिकतर कामकाज करती है। यह चलन पूरे दक्षिणी एशिया में ही नहीं संसार के अधिकतर हिस्सों में है। यही सोच हमारे परिवारों, हमारे रिश्तों और हम सभी के अन्दर व्याप्त है।

जाति या लिंग और गृह कार्य के संबंधों की गांठ इतनी मज़बूत है कि ऐसा लगता है जैसे इसे खोलना नामुमकिन होगा। लिंगों की असमानता को इतना ज़्यादा और इस हद तक महत्व दिया गया है कि करोड़ों लोगों का यह मानना है कि मां को ही बच्चों की पूरी देखभाल करनी चाहिए, और पिता इस काम में थोड़ा बहुत सहयोग करे। जो संवेदनशील पुरुष होते हैं वो इस काम से सहयोग

करते हैं अगर उनके पास समय होता है। औरतें स्तनपान कराती हैं; परन्तु मर्दों में ऐसी कोई शारीरिक कमी तो है नहीं कि वे बच्चे का लंगोट नहीं बदल सकते। परन्तु बहुत कम पुरुष ऐसा करते हैं। लड़कियां घर के कामकाज बहुत जल्दी सीख जाती हैं, प्यार से और बिना विवाद किए। घर का काम उनके लिए उनके जीवन का अंग बन जाता है, उनकी पहचान बन जाता है। दूसरी ओर लड़कों में पात्रता की भावना जन्म ले लेती है। लड़के इसी सोच के साथ बड़े होते हैं कि देखभाल करवाना उनका अधिकार है।

लिंग आधारित घर के काम के बंटवारे से बहुत ही गंभीर स्थिति पैदा हो गई है। आजकल न सिर्फ़ आमदनी, धन का बंटवारा बल्कि समाज के हर बंटवारे के पीछे लैंगिक सोच रची-बसी है।

घर के काम की कीमत

हमारा मानना है कि घर के काम करने में कोई दोष नहीं होता। यह एक महत्वपूर्ण काम है जिसे करने के लिए कौशल की आवश्यकता है- शारीरिक, बौद्धिक और भावुकता की ज़रूरत है। पर गलती इस काम को करने वाली महिलाओं को व उनके श्रम को कमतर आंकने वाली सोच में है।

मध्यमवर्गीय परिवारों में महिलाएं घर का काम परिवार की दूसरी महिलाओं या घर की कामगर के साथ करती हैं। घर के कामों में सफ़ाई, कपड़े धोना, झाड़-पोछ और बच्चों के मल-मूत्र जैसे “गंदे” काम औरतों के ही ज़िम्मे होता है। गंदगी साफ़ करने से जुड़े काम समाज में भी सबसे निम्न वर्ग के लोगों के सुपुर्द किए जाते हैं।

घरेलू कामगरों को भी अपने घरों की देखभाल करनी पड़ती है। कामगर परिवारों में बेटियां अपनी मां के साथ घर के कामों में हाथ बंटाती हैं। इसके लिए उन्हें अपनी शिक्षा, शौक और मनोरंजन छोड़ने पड़ते हैं। करोड़ों कामगर महिलाएं दिन में 16 से 18 घंटों तक काम करती हैं, इन कामों के लिए मुआवज़ा भी काफ़ी कम होता है। और साथ ही लगातार परिश्रम करने की वजह से उन्हें थकान और कमज़ोरी घेर लेती है और वह बीमार पड़ जाती हैं।

“मेरी मां एक शिक्षिका थीं। उन्हें पढ़ने-पढ़ाने से बहुत लगाव था। मां एक गृह-स्वामिनी भी थीं जिसे अपने घर के काम जैसे खाना बनाना, परोसना, साफ़-सफ़ाई, झाड़-पोंछ, सिलाई, बागवानी आदि करना अच्छा लगता था। वे एक लेखिका भी थीं और नाटकों में भाग लिया करती थीं। मां रोज़ सुबह तीन बजे उठती थीं और अपने काम पर जाने से पहले पूरे घर के लिए खाना बनाती थीं। पापा हम दोनों बहनों को नाश्ता कराते थे। मां हमारे पीछे खड़ी होकर हमारे बालों की दो लम्बी चोटियां बनाती थीं जिन्हें वह एक रिबन से बांधती थी, एक सुन्दर से बो के साथ। काम के बोझ व तनाव के कारण मां को कई बीमारियों ने घेर लिया था— पीठ का दर्द, उच्च रक्तचाप, नींद न आना, हड्डियों का कमज़ोर होना। सेवानिवृत्ति के बाद भी उनकी नींद सूरज निकलने से पहले ही खुल जाती थी। उस समय से लेकर रात तक वे अपने घर के काम व लिखने-पढ़ने में जुटी रहती थीं।

एक दोस्त ने मुझे व्हॉटसएप पर यह चुटकुला भेजा और उसके आगे उसने अपने विचार जोड़ दिए थे ‘भारतीय पुरुषों को बदलना मुमकिन नहीं है। हमें अपनी अगली पीढ़ी को संवेदनशील बनाना होगा।’

यह सिलसिला तब तक चलता रहा जब तक उनके शरीर ने जवाब नहीं दे दिया। इस घटना से हम यह समझ सकते हैं कि मध्यम वर्ग की शिक्षित औरत के लिए भी घर के काम से निजात पाना मुश्किल होता है। अगर घर का कोई पुरुष औरत की मदद करता है या उसके प्रति संवेदनशील रवैया रखता है तो यह उस महिला की खुशकिस्मती और उस पुरुष के बड़प्पन के तौर पर देखा जाता है। पर ऐसे पुरुषों की भी समाज में तादाद कम ही है अपने घर में भी। जहां तक मुझे याद है मैंने हमेशा लोगों को मेरे पिता की प्रशंसा करते ही सुना कि वे कितने अच्छे हैं मां कितनी भाग्यशाली हैं कि उन्हें इतना अच्छा पति मिला है।

हमारे समाज में आज भी घर का काम बिना पैसे का काम माना जाता है। इस परिश्रम के रूप में नहीं स्वीकारा जाता। साधारण लोग ही नहीं बल्कि मज़दूर संगठन और अर्थशास्त्री भी घरेलू काम को एक श्रम का दर्जा नहीं देते और उसे नज़रअंदाज़ करते हैं। जबकि सच्चाई तो यह है कि घर का काम एक ऐसा काम है जिससे बचा नहीं जा सकता और इसे करने में महिलाएं बहुत समय व्यतीत करती हैं।

सिर्फ़ हमारी समस्या नहीं

कुछ दिन पहले मैंने कुछ अंतर्राष्ट्रीय छात्रों से लिंग के आधार पर काम करने वालों की भूमिका का वर्णन करने के लिए कहा। यह छात्र जॉर्डन, मंगोलिया, बंगलादेश, श्रीलंका, नमीबिया, युगांडा, नाइजीरिया, सियेरा लियोन, इथीथोपिया, यूक्रेन और आर्जेन्टीना के थे। अधिकतर ने बताया कि महिलाएं या तो अवैतनिक या बहुत कम पारिश्रमिक मिलने वाले काम करती हैं जैसे खेती-बाड़ी, बच्चों की देखभाल, पानी लाना, लकड़ी काटना, चारा लाना, मवेशियों की देखभाल, सचिवों के पद पर प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षिका और नर्स। पुरुष ज़मींदार होते हैं, कारखानों में काम करते हैं, सरकारी दफ्तरों में काम करते हैं, पर्यवेक्षक होते हैं, उच्चतर विद्यालयों में शिक्षक होते हैं, चिकित्सक, सैनिक, प्रबंधक और नेता होते हैं।

जो पुरुष घर के काम करते हैं उन्हें हमारे समाज में 'जोरू का गुलाम' कहा जाता है। वे लोगों के मजाक़ का कारण बन जाते हैं, जैसे कि–

दोस्त 1 भाई, तुम क्या कर रहे हो?

दोस्त 2 अभी-अभी धर्मपत्नी के साथ रात का भोजन खत्म किया है... अब हाथ में स्कॉच है...

दोस्त 1 वाह! क्या बात है! 'ब्लैक लेबल' या 'रेड लेबल'??

दोस्त 2 अबे, 'स्कॉच ब्राईट', बर्तन साफ़ करने वाला...

व्हॉटसएप संदेश के नीचे इमोटिकान के तहत एक रोता हुआ चेहरा बना हुआ था।

पूंजीवाद, पितृसत्ता और श्रम

महिलाओं द्वारा घर में किए गए काम संसार में व्याप्त पूंजीवाद और पितृसत्ता को बहुत बड़ा संबल प्रदान करते हैं। एक औरत घर को सुचारू रूप से चलाकर घर की आय बढ़ाने वाले पुरुष और दूसरी महिलाओं को सहयोग देती है। वह ज़िन्दगी का पोषण करती है। और वह नए कर्मी तैयार करती है जो कि इस अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनते हैं।

परन्तु सवाल ये है कि अगली पीढ़ी बदलेगी कैसे अगर आज की पीढ़ी उस बदलाव की शुरूआत नहीं करती। आजकल के बच्चों की परवरिश उस माहौल में हो रही है जिसमें विषमलिंगी भूमिकाएं इतने गहरे पैठ चुकी हैं कि ये बच्चे भी इसी सोच के साथ बड़े होंगे। और यह तब तक चलता रहेगा जब तक उनके माता-पिता इस असमानता को ज़िन्दगी को सच मानकर जीते रहेंगे।

महिलाओं के आंदोलन से जुड़े हम लोग तो यही चाहेंगे कि घर के काम में पुरुषों और महिलाओं, दोनों में समान बंटना चाहिए। परन्तु यह लक्ष्य अभी बहुत दूर है क्योंकि हममें से अधिकतर महिलाओं को घर जाकर खाना पकाना है, बच्चों को देखना है या फिर घर के बड़े-बूढ़े या बीमारों की देखभाल करनी है या.... और मुझे भी तो अभी जाकर अपने परिवार के लिए खाना बनाना है।

दीप्ति प्रिया मेहरोत्रा, *एक शिक्षिका व नारीवादी लेखिका हैं।*

आमने-सामने

महिला मज़दूरों की बुलंद आवाज़

सुजाता घोटोस्कर

“हमें आरती के लिए न्याय चाहिए, *प्रसूति अवकाश हर महिला कर्मचारी का अधिकार है,” उत्तर बंगाल के नेओरा नुडी चारा बागानों की महिला कर्मचारी बड़ी संख्या में इकट्ठा होकर प्रबंधकों के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ बुलंद कर रही थीं क्योंकि प्रबंधकों ने उन्हें बीमारी और प्रसूति अवकाश, दोनों देने से मना कर दिया था। महिला कर्मचारियों का ऐसा मानना था कि यह छुट्टियां उनका वैध कानूनी अधिकार है। यह सिर्फ़ आधे दशक पहले की बात है।*

इस साल की शुरूआत में केरल के मुनार क्षेत्र के चाय बागानों के कर्मचारियों ने अपनी आवाज़ बुलंद की। उन्हें पता था कि कंपनी ने मुनाफ़ा कमाया है इसलिए उन्होंने 20 प्रतिशत बोनस की मांग की। मालिकों व मज़दूर संघ ने कामगरों की मांगों का समर्थन नहीं किया। मीलों फैले हुए चाय के बगीचों में महिला मज़दूर एकत्रित होकर, मज़दूर नेताओं और मालिकों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करने लगीं। वे महिलाएं अपना नेतृत्व स्वयं कर रही थीं।

चाय बागानों की हकीकत

चाय बागानों के मालिक जिनका रवैया आज तक जागीरदारों जैसा था, महिलाओं के इस आकस्मिक विरोध के लिए तैयार न थे। 9 दिनों की हड़ताल के बाद महिलाओं की तत्कालीन मांगे पूरी की गईं। प्रबंधकों को न केवल अधिक बोनस पर राज़ी होना पड़ा। बल्कि बातचीत के बाद उन्हें मज़दूरी की दर बढ़ानी पड़ी, और चाय बागानों में बेहतर सुविधाओं का भी आश्वासन देना पड़ा। महिला कर्मचारियों ने अपना अलग मज़दूर संघ बनाया- पेम्बिला ओरूमाई (महिला एकता) आलेख के अनुसार महिला मज़दूरों का यह अहसास और गहरा होता जा रहा था कि सारे प्रादेशिक मज़दूर संगठन पुरुष प्रधान हैं और उनको महिलाओं से जुड़ी समस्याओं का हल ढूंढने के प्रति कोई रुझान नहीं है।

चाय की पत्तियां एकत्रित करती हुई युवतियां

यह भावना ऐसे कार्य क्षेत्रों में अधिक बढ़ती जा रही थी जहां मज़दूर संघ तो पुरुष प्रधान थे पर काम करने वालों की जनसंख्या में अधिकतर महिलाएं थी।

विरोध और नेतृत्व

हाल ही में सरकार के नए भविष्य निधि क़ानून को लेकर भी कई विरोध सामने आए हैं। इस नए विवादास्पद क़ानून के विरोध में वस्त्र उद्योग से जुड़े हुए हज़ारों कर्मचारी बंगलुरू की सड़कों पर उतर पड़े। परिणामस्वरूप सरकार को यह क़ानून वापिस लेना पड़ा। यह विरोध पूरी तरह स्वैच्छिक, असंगठित और नेतृत्वविहीन था, और पुलिस के लिए इस पर काबू पाना एक बड़ी चुनौती बन गया था। ख़बरों के अनुसार मज़दूर संघ के नेताओं को इसके बारे में कोई जानकारी नहीं थी और वे भी अचंभित रह गए थे।

बंगलुरू के इस विरोध की पृष्ठभूमि कुछ इस प्रकार है। फ़रवरी में प्रादेशिक सरकार ने भविष्यनिधि क़ानून के नियमों में कुछ बदलाव का ऐलान किया। बदले हुए नियमों के अनुसार, कर्मचारी अपने हिस्से की योगदान की हुई भविष्य निधि राशि का अपने कार्यकाल के दौरान

ही इस्तेमाल कर सकते हैं। नियोक्ता द्वारा दी गई राशि एवं उसका ब्याज़ 58 साल की उम्र में अवकाश प्राप्ति के बाद ही मिल सकता था। भविष्य निधि राशि, बेराज़गारी, आकस्मिक बीमारी या किसी अन्य विपदा के समय मज़दूरों का बहुत बड़ा सहारा होती है। इस विरोध में शामिल मज़दूरों में 80 प्रतिशत से अधिक महिलाएं थीं।

संघर्षों के कई आयाम

देश के विभिन्न हिस्सों में और देश के बाहर भी महिलाओं के संघर्ष के कई उदाहरण मिलते हैं। इस संघर्ष के कई पहलू हैं। सबसे बड़ा कारण है कि महिला मज़दूर अधिकतर अप्रशिक्षित होती हैं। साथ ही उनके काम को हुनरमंद काम करने वाले पुरुष मज़दूरों की तुलना में कम आंका जाता है।

सालों और दशकों से महिलाएं इस पुरुष प्रधान मानसिकता और उससे बने सामाजिक ढांचे को बदलने के लिए संघर्ष करती आई हैं। लेकिन पुरुष प्रधान मानसिकता महिलाओं को बराबरी का दर्जा नहीं देना चाहती। इसलिए मज़दूर संगठनों को गणतांत्रिक होना और उनमें महिलाओं की अधिक भागीदारी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1. इतिहास गवाह है कि आरम्भ से लेकर आज तक मज़दूर संघों पर पुरुषों का ही कब्ज़ा रहा है।
2. यह संगठन केवल अपने अधिकार के लिए मालिक वर्ग से विरोध ही नहीं करते थे बल्कि उनका विरोध महिलाओं के प्रति भी था।
3. महिला कर्मचारियों के योगदान, समस्याओं एवं प्रबंधक वर्ग द्वारा उनके शोषण को कभी गंभीरता से नहीं लिया गया है। मज़दूर संघों ने हमेशा पुरुष कामगरों से जुड़ी समस्याओं पर ही अधिक ध्यान दिया है। मुंबई में हिन्दुस्तान लीवर एवं अन्य औषधीय संस्थानों की महिला कामगरों ने यह मुद्दा उठाते हुए अलग महिला मज़दूर संगठनों की आवश्यकता पर बल दिया है।
4. एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह है कि समाज आज भी महिलाओं को पुरुषों के बराबर नहीं देखता। हर महिला को उसकी लैंगिकता, सामाजिक स्थिति, जाति व धर्म के आधार पर तरह-तरह की लक्ष्मण रेखाओं में बांध दिया जाता है।

भारत जैसे देश में एक और समस्या यह है कि 90 प्रतिशत से ज़्यादा महिला कामगर असंगठित कुटीर उद्योगों से जुड़ी हुई है और मज़दूर संघों का प्रभुत्व केवल बड़े औद्योगिक संस्थानों तक ही सीमित है। लेकिन एक सकारात्मक बदलाव यह है कि कुटीर उद्योगों से जुड़ी महिलाएं ही संगठित होकर अपनी आवाज़ बुलंद कर रही हैं। चाहे आशा या आंगनवाड़ी कर्मचारी हों या नरेगा से जुड़ी महिलाओं, तमाम अड़चनों के बावजूद वे आज संगठित होकर अपने अधिकारों की मांग कर रही हैं।

सुजाता घोटोस्कर, *महिला आंदोलन की सक्रिय नारीवादी कार्यकर्ता हैं।*

महिला चाय बागान कर्मचारी सभा

चाय की पत्तियों का वज़न कराने के लिए कतार में खड़ी हुई महिला कर्मचारी

ईंट ढोती महिला मज़दूर

असंगठित क्षेत्र की मज़दूर महिलाएं कहां करें शिकायत?

सुनीता ठाकुर

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न क़ानून के तहत संगठित क्षेत्र के कार्यस्थलों में यौन उत्पीड़न के मामलों की सुनवाई आंतरिक शिकायत समिति के समक्ष की जा सकती है, जिनका गठन करना उस संस्थान या प्रतिष्ठान के मालिक, नियोक्ता की ज़िम्मेदारी होती है। किंतु इस क़ानून का लाभ उठाना असंगठित क्षेत्र मज़दूर महिलाओं के बहुत कठिन जान पड़ता है क्योंकि अभी तक देश और यहां तक कि दिल्ली और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में भी स्थानीय शिकायत समितियों के गठन की कोई सूचना या संभावना सामने नहीं आई है। इस क़ानून में असंगठित क्षेत्र मज़दूर महिलाओं के साथ होने वाली यौन उत्पीड़न की घटनाओं की रोकथाम और ऐसे मामलों पर सुनवाई के लिए जिला स्तर पर स्थानीय शिकायत के गठन का प्रावधान किया गया था जो अभी तक अमल में नहीं आया है।

ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठता है कि इस क्षेत्र (निर्माण मज़दूरी, कचरा बीनने, कबाड़ व्यवसाय, अन्य मज़दूरियों, विक्रय/मंडियों व दुकानों, घरेलू काम आदि) में काम करने वाली महिलाओं व मज़दूर अपने साथ होने वाली यौन अत्याचार की घटनाओं की शिकायत कहां और कैसे करें। इस सवाल का जवाब निम्न रणनीतियों में खोजा जा सकता है-

1. अगर आपके साथ आपका नियोक्ता या काम मालिक, ठेकेदार किसी भी प्रकार का यौनिक अनाचरण करता है और उसे ठुकराए जाने पर आपकी आमदनी में कटौती, रोक, काम से निकालने की कोशिश या ऐसी धमकी देता है तो आप इसकी शिकायत अपने स्थानीय पुलिस थाने में कर सकती हैं।
2. इसके बारे में आप अपने इलाके में स्थित ग़ैर सरकारी संस्था, महिला संगठन/संस्था, महिला पंचायत अथवा

श्रम अधिकारों पर काम करने वाली संस्था/समिति में भी शिकायत दर्ज करा सकती हैं और क़ानूनी सलाह ले सकती हैं।

3. आप महिला हैल्पलाइन 181, 1091 अथवा 1095 पर भी अपनी शिकायत दर्ज करा सकती हैं। ये हैल्पलाइन सेवाएं स्थानीय पुलिस के सहयोग से आपको सहायता मुहैया करा सकती हैं।
4. अगर आप किसी ऐसे इलाके में काम करती हैं जहां आर.डब्ल्यु.ए. (निवासी कल्याण समिति) हैं तो आप अपनी शिकायत उस समिति के समक्ष भी प्रस्तुत कर सकती हैं और उनसे सहयोग की मांग कर सकती हैं।

काम के समय का एक दृश्य

5. आप यदि किसी प्लेसमेंट एजेंसी, व्यापार यूनियन अथवा कामगार संगठन, समूह से जुड़ी हैं तो आप अपने समूह से भी इस विषय में सहयोग ले सकती हैं।

इस विषय में कुछ मूल बातों का ध्यान अवश्य रखें—

1. अपने काम के धंटों, घटना का समय, तारीख याद रखें।
2. लेन-देन का हिसाब लिखकर रखें।
3. किसी भी प्रकार के यौनिक दुराचरण के बारे में अपने सहकर्मी/मज़दूर साथिनों से अवश्य बात करें।
4. अगर आप लिखना जानती हैं, मोबाइल आदि के प्रयोग से अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं तो लिखित पत्र, एस.एम.एस. आदि के ज़रिए ऐसे अनुचित यौनिक हरकतों के बारे में आरोपी के खिलाफ़ लिखित विरोध प्रकट करें और इस तरह उसकी इन हरक़तों को लिखित रिकॉर्ड में लाएं।
5. ऐसा करना आपके लिए आगे की क़ानूनी या सहायता कार्रवाई में लाभकारी हो सकता है।
6. अगर आप किसी ऐसी जगह/घर पर काम करती हैं जहां सी.सी.टी.वी. कैमरा आदि की सुविधा है तो आप उसके रिकॉर्ड को भी इस्तेमाल कर सकते हैं, किंतु इसके लिए आपको घटना के दिन, समय और जगह का ध्यान रखना ज़रूरी है।
7. अगर आपने इस घटना के विषय में कहीं भी लिखित शिकायत दर्ज की है तो उसकी सत्यापित प्रति अवश्य अपने पास रखें।
8. अगर आपको घटना की वजह से किसी प्रकार की चोट आती है तो आप उसकी एम.एल.सी. अथवा मेडिकल जांच के रिकॉर्ड/प्रमाण अवश्य संभाल कर रखें।
9. अपना नियोक्ता कार्ड, नियुक्ति पत्र, अनुबंध पत्र, हाज़िरी कार्ड, श्रम कार्ड जैसे प्रमाण संभाल कर रखें।
10. अगर ऐसे कोई भी प्रपत्र आपको नहीं दिए गए हैं तो उनकी मांग करें, अन्यथा अपने पास लिखकर रखें और संबंध में अन्य लोगों को जानकारी, सूचना दें कि आप वहां काम करती हैं।

याद रखें

अपराध के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाना ज़रूरी है, न्याय मिले या न मिले यह बाद की बात है, हम अन्याय का विरोध तो करें, आवाज़ तो उठाएं!

सुनीता ठाकुर, *जागोरी में कार्यरत हैं।*

बाल देखरेख सुविधाः
कामकाजी माता-पिता की एक अहम् ज़रूरत

नीलिमा श्रीवास्तव

तस्वीर के दो रूख

आज भारत की बदलती तस्वीर में हम देखते हैं कि पति-पत्नी दोनों अपने-अपने काम में व्यस्त हैं। सत्तर और अस्सी के दशक से भिन्न आज औरतों के लिए रोज़गार के अनेक रास्ते तथा अवसर उपलब्ध हैं। वे कामकाजी बाज़ार में प्रवेश पाने के लिए अधिक योग्य व सक्षम भी हैं। इसके अतिरिक्त परिवार की खुशहाली के लिए कमाई के दो ज़रियों की ज़रूरत बढ़ने के साथ-साथ औरतों की अपने पैरों पर खड़े होने की इच्छा और आकांक्षा भी एक अहम् कारण है जिनके चलते आज परिवारों का ढांचा बदल रहा है। हालांकि यह परिदृश्य शहरों और महानगरों में ज़्यादा दिखाई देता है परंतु गांव और कस्बे भी तेज़ी से बदल रहे हैं।

इस तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि समाज और परिवार में औरतों से अपेक्षाएं तथा उनकी जेंडर भूमिका के प्रति सोच में उतना अधिक बदलाव नहीं आया है। उनकी प्रजनक भूमिका को उत्पादक भूमिका से अधिक महत्व दिया जाता है। पारिवारिक आमदनी में अहम् योगदान देने के बावजूद, परिवार तथा ख़ासतौर पर बच्चों की देखभाल की प्रमुख ज़िम्मेदारी उनकी ही रहती है जबकि मर्दों के पास चुनाव की सुविधा है कि वे घरेलू काम में हाथ बंटाएं या नहीं।

एक दुष्चक्र

इस बात में कोई शक नहीं कि बच्चों के समुचित विकास और कल्याण के लिए उनकी सही देखरेख आवश्यक है। परिणामस्वरूप काम का दोहरा-तिहरा बोझ औरतों का शारीरिक व मानसिक तनाव बढ़ा रहा है। शहरों में बच्चों की देखरेख के लिए काम वाली बाई के रूप में बाहरी मदद उपलब्ध है लेकिन उस बाई के बच्चों की ज़िम्मेदारी भी उसकी ही होती है। नतीजा यह होता है कि कामगर वर्ग के परिवारों में घर की बेटी, मां की अनुपस्थिति में उसकी

भूमिका संभाल लेती है। वह स्कूल न जाकर अपने घर का काम और छोटे भाई-बहनों की देखरेख करती है। मध्यमवर्गीय परिवारों में कुछ बड़े बच्चे प्रायः ताला-चाबी व्यवस्था में जीते हैं जहां स्कूल से लौटने पर उनके माता-पिता के आने तक वे घर में अकेले रहते हैं। यह स्थिति विशेषतः माताओं को अपराधबोध से भर देती है और कई बार वे काम छोड़ने के लिए मजबूर हो जाती हैं।

कुछ आंकड़े

कामकाजी माताओं संबंधी विश्व बैंक की 2013 की रिपोर्ट बताती है कि भारत में पंद्रह वर्ष से ऊपर की केवल 27 प्रतिशत महिला जनसंख्या कामकाजी है जो 'ब्रिक' देशों में सबसे कम है जबकि चीन में महिलाओं की भागीदारी सबसे अधिक, 68 प्रतिशत है। दिल्ली, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की एक हज़ार औरतों के साथ बी.बी.सी. द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार बच्चे के जन्म के बाद केवल 18-34 प्रतिशत विवाहित महिलाएं ही बाहर काम करना जारी रख पाती हैं।

कुछ प्रावधान

भारत सरकार समय-समय पर अपनी नीतियों और संवैधानिक व्यवस्थाओं के ज़रिए सहयोगात्मक कदम उठाती रही है जैसे *फ़ैक्टरी क़ानून 1948* के तहत बालवाड़ी की सुविधा, कामकाजी तथा बीमार माताओं के बच्चों के लिए 'क्रैश' हेतु वित्तीय सहायता योजना (1975) अथवा राष्ट्रीय क्रैश कोष (1993-94) की स्थापना आदि।

मातृत्व लाभ क़ानून 1961 यह आवासन देता है कि कामकाजी महिलाओं के प्रसव काल में काम न कर पाने के अधिकार की सुरक्षा की जाएगी। यह क़ानून खदानों, कारखानों, दफ़्तरों, दुकानों और ऐसी सभी संस्थाओं पर लागू होता है जहां पिछले एक वर्ष में दस या उससे अधिक औरतें कार्यरत् रही हैं।

प्रत्येक वह महिला जो 80 दिन तक काम कर चुकी है, छह सप्ताह की सवेतन मातृत्व छुट्टी पाने की हक़दार होती है। इसी संदर्भ में केंद्रीय सरकार का एक अन्य क़दम क़ाबिले तारीफ़ है जिसमें महिलाओं के लिए अपने अवयस्क बच्चों की देखरेख के लिए दो वर्ष तक की सवेतन छुट्टी का प्रावधान है।

कठोर सत्य

यह सभी बातें सुनने में बहुत अच्छी मालूम होती हैं, पर सच्चाई यह है कि भारत में केवल 1 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं ही सवेतन छुट्टी का लाभ उठा पाती हैं। बी.बी.सी. के उसी सर्वेक्षण से यह भी सामने आया कि वर्ष 2008-12 के बीच भारत की श्रम अदालतों में मालिकों के द्वारा मातृत्व लाभ न दिए जाने की 900 शिकायतें दर्ज कराई गईं। यहां यह बताना भी ज़रूरी है कि अधिकांश महिलाएं समय और संसाधनों की कमी के कारण शिकायत दर्ज कराती ही नहीं हैं। वे या तो स्थाई रूप से श्रम बाज़ार से निकल जाती हैं या बच्चों के बड़े होने तक कोई छोटा-मोटा काम अथवा घरेलू धंधा करने लगती हैं।

उल्लेखनीय प्रयत्न

इस पृष्ठभूमि को नज़र में रखते हुए हमें ऐसी ग़ैरसरकारी संस्थाओं, कर्मियों और सामाजिक संगठनों के काम की चर्चा करनी आवश्यक है जिन्होंने कामकाजी औरतों

के लिए बाल देखरेख सुविधा के सफल उदाहरण पेश किए हैं।

'सेवा' द्वारा *(चाइल्ड केयर वर्कर्स कोऑपरेटिव) 'शैशव'* तथा *मोबाइल क्रैश* ऐसे दो उल्लेखनीय प्रयोग हैं जो सेवा से जुड़ी कामकाजी औरतों तथा इमारती काम में मज़दूरी करने वाली औरतों को यह सहूलियत दे रहे हैं।

साथ ही मुंबई में *फ़ैमिली डे केयर* नामक परिवार में सामूहिक रूप से बच्चों की देखभाल करने वाली व्यवस्था भी एक सफल प्रयोग के रूप में प्रशंसित है। यह महिलाओं को उनके घर के नज़दीक, सुविधात्मक लचीली बाल देखरेख मुहैया करा रही है।

अतः यह महत्वपूर्ण है कि सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों का फ़ायदा उठाते हुए ग़ैरसरकारी संस्थाओं और कार्यकर्ताओं को बढ़ावा दिया जाए ताकि हमारे विशाल कामकाजी महिला वर्ग को बाल देखरेख सुविधा मिल सके। इस प्रकार की सुविधाओं के अभाव वाले हमारे देश में सरकारी और ग़ैरसरकारी सहयोग वाले नमूने को भी आज़माया जा सकता है। अमरीकी संदर्भ में राष्ट्रपति बराक ओबामा की एक टिप्पणी हमारे देश पर भी लागू होती है।

"अब समय आ गया है कि बाल देखरेख को एक ग़ैरज़रूरी मुद्दे या केवल औरतों के मुद्दे की तरह देखना बंद करके इसे राष्ट्रीय आर्थिक नीति की भांति ही हम सबके लिए महत्वपूर्ण मुद्दा समझें।"

नीलिमा श्रीवास्तव, *महिला व बाल अधिकारों पर लिखती हैं।*

आर्थिक जानकारी से मिली सशक्तता

ऐश्ली

"एक कामकाजी महिला होने के कारण जो मेरा सबसे बहुमूल्य अधिकार है, महीने के अन्त में मिलने वाला वेतन। सिर्फ़ इसलिए क्योंकि मेरे सारे यात्रा संबंधित प्लान, खरीददारी, घूमना-फिरना आदि सभी इस पर आश्रित हैं। मैं यह पूरे विश्वास के साथ कह सकती हूं कि सभी कामकाजी महिलाओं के लिए ऐसा ही होता होगा। इस लेख के जरिए मैं अपना यह अनुभव औरों तक पहुंचाना चाहती हूं कि एक एकल कामकाजी महिला किस प्रकार आर्थिक ज्ञान हासिल करके अपनी ज़िन्दगी को सुरक्षित बना सकती है।

मुझे आज भी वह खुशनुमा दिन याद है, जब तीन साल पहले अपनी पहली मासिक आय में से मैंने छः हजार रुपए बचाए थे। एक कामकाजी महिला के रूप में बचत करने का यह मेरा पहला अनुभव था।

करीब एक साल पहले मैंने *म्यूचुअल फंड* की विभिन्न योजनाओं में निवेश करना शुरू किया। *म्यूचुअल फंड* अधिकांश एक ट्रस्ट के रूप में होते हैं। इन्हें *म्यूचुअल फंड भारतीय न्याय अधिनियम* कहा जाता है। निवेशकों से लिया गया पैसा अलग-अलग फंडों में निवेश कर दिया जाता है और लाभ की राशि सभी निवेशकों में बांटी जाती है। हर म्यूचुअल फंड की कई प्रतिभित्तियां होती हैं जिनके लक्ष्य, अवधि, जोखिम आदि सभी पूर्व निर्धारित होते हैं।

जब मैंने निवेश करना शुरू किया था, मुझे बचत और निवेश की भिन्नता का ज्ञान था। काम शुरू करने के पहले साल में मैंने हाथ में आई अतिरिक्त मुद्रा का भरपूर आनन्द उठाया। मेरी ज़रूरतें सीमित थीं क्योंकि तब मैं एक हॉस्टल में रहती थी। धीरे-धीरे मेरी ज़रूरतें बढ़ी और मैंने एक कमरा किराए पर ले लिया।

यह हम सब जानते हैं कि जब हमारी ज़रूरतें बढ़ती हैं तो हमारे खर्चे भी बढ़ जाते हैं। और फिर हम अपने यह बढ़े हुए खर्चे अपनी उसी सीमित आय में पूरे करने की कोशिश करते हैं। पर हमारी आय हमारी ज़रूरतों और खर्चों की रफ्तार से नहीं बढ़ती है। इसलिए मुझे यह अहसास हो गया कि मुझे एक योजना के तहत चलना होगा अगर मैं अपनी बचाई हुई आमदनी खर्च नहीं करना चाहती।

उसी वक्त मुझे लगा कि मुझे अपना आर्थिक ज्ञान बढ़ाना होगा। मेरी बचत करने की क्षमता बढ़ी, पर उसके साथ-साथ मेरी ज़रूरतें और खर्चे भी उसी दर से बढ़ते गए। मैं अपने हर अतिरिक्त खर्चे के लिए अपनी चल सम्पत्ति या बचत पर आश्रित थी, मुझे अहसास हुआ कि हर महीने के अन्त में मेरी बचत लगभग समान ही रहती थीं पर इतनी बचत मेरे पूरे जीवन को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए काफी नहीं थी।

शुरू में इस बात ने मुझे अधिक परेशान नहीं किया। मैंने काम करना शुरू किया था, उसका उत्साह था। मैं एक नए शहर में अकेली रह रही थी। इससे मुझे एक आंतरिक संतोष और स्वतंत्रता का आभास होता था। तब मैंने अपने आर्थिक सुरक्षा के ज्ञान को बढ़ाना शुरू किया। और यह सब मैंने इसलिए किया क्योंकि मैं चाहती थी कि मेरी मेहनत की कमाई भविष्य में भी मेरी मदद करे।

शुरू में इस बचत खातों और शेयर बाजारों की दुनिया से मुझे थोड़ा डर लगता था। लड़कपन में मैं सोचती थी कि मुझे एक सीमा में रहना चाहिए, ज्यादा जिज्ञासु होने की ज़रूरत नहीं है। और व्यक्तिगत रूप से मैंने इस सोच का मार्ग अपने स्नातक होने तक अपनाया। फिर जब आर्थिक मामलों से जूझना शुरू किया तो यह सोच वहां पर भी आड़े आई। मैं यह देखते, सुनते बड़ी हुई हूं कि औरतें आर्थिक मामले ज़्यादा नहीं संभाल सकतीं।

फिर मैंने जाना कि यह बहुत ज़रूरी है कि हम इस तरह की धारणाओं को बदलें, इन रुकावटों को तोड़ें। एक अकेली कामकाजी महिला के लिए मानों यह स्वतंत्रता की ओर बढ़ा हुआ एक और कदम होगा। हर कामकाजी महिला के अधिकारों ने उसके सामने अवसरों की सीमाएं खोल दी हैं। जरूरी नहीं ये हमेशा आपके काम से संबंधित हो। और ये भी जरूरी नहीं कि इस सबके लिए हम अपनी ज़िन्दगी और इच्छाओं को नज़रअंदाज करें।

अच्छे और विश्वसनीय मित्र होना, या ऐसे स्रोत होना जिन पर हम विश्वास कर सकते हैं, इस काम में हमारी मदद कर सकते हैं। कभी-कभी हमें किसी बाहरी स्रोत पर विश्वास करना पड़ सकता है, जैसे कि मैंने किया। कभी-कभी हमें अपने आपको ढकेलना पड़ता है। उस लेख या कागज़ी कार्रवाई पढ़ने का अतिरिक्त जोखिम उठाना पड़ता है, या बैंक में जाकर संबंद्ध अधिकारी से बात करनी पड़ती है। मैंने यह सब किया। मैं एक विश्वसनीय आर्थिक सलाहकार से मिली, ताकि वह मेरे आर्थिक लक्ष्य तक पहुंचने में मेरी मदद करे। इसका सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि मुझे अपने लक्ष्य को आर्थिक रूप देने में मदद मिली। मुझे समझाया गया था कि मैं

अपने मध्यम और दीर्घकालिक लक्ष्यों को आर्थिक नज़रों से देखूं। मुझे झोली भर कर जानकारी मिली, जिसके तहत मैं 3-6 महीनों या एक साल की छोटी अवधि के लिए निवेश कर सकती थीं। अपनी ज़रूरतों पर आधारित खुद के बारे में सुनिश्चित होना इस सीढ़ी की पहला पायदान थी। आर्थिक जानकारी आपको अपने लिए सोचने, कल्पना करने, योजना बनाने और सपने देखने के लिए प्रेरित करती है। हम अपने लिए जो भी लक्ष्य निर्धारित करते हैं, जो भी योजनाएं बनाते हैं वे हमारी आय में संबंधित होते हैं, चाहे वो शादी हो, बच्चों की पढ़ाई, घर, यात्राएं, उपकरणों की खरीददारी, गाड़ी, कपड़े, अन्य सामान या दोस्तों के साथ सैर-सपाटा, प्रवेश परीक्षा आदि।

अगर आप अपनी आय को विभिन्न स्तरों की बचत और निवेशों से जोड़ने में सफल हो जाते हैं तो आप खुद अपनी ज़िन्दगी को अलग-अलग तरीकों से अपने और अपने परिजनों के लिए समृद्ध कर लेंगे।

आज मैं दो भारतीय म्यूचुअल फंड कंपनियों में नियमित तौर पर निवेश करती हूं। यह सिर्फ़ एक ऐसा कदम है जो मैंने कामकाजी महिला के रूप में लिया है। मुझे अभी और बहुत सारे अवसरों को खोजना है और इस पितृसत्तात्मक सोच को बदलना है कि औरतें आर्थिक रूप से साक्षर नहीं होतीं।"

ऐश्ली, *जागोरी में काम करती हैं।*

महिलाओं की मांग-शौचालय

विभूति पटेल

मुंबई में सर्वाधिक संख्या में देश की कामकाजी औरतें रहती हैं जो इस महानगर की तरक्की में एक अहम् भूमिका निभाती हैं। आज ज़्यादा से ज़्यादा संख्या में लड़कियां व महिलाएं लम्बे समय तक घर से बाहर रहती हैं, अकेली सफ़र करती हैं। अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत् औरतें औसतन रोज़ाना 16 घंटे घर से बाहर रहती हैं।

उनकी रोज़मर्रा की इस मेहनतकश ज़िंदगी में उन्हें अनेक मुश्किलों का सामना करना पड़ता है, जिनमें से एक बड़ी समस्या है महिला शौचालयों की उपलब्धता। मुंबई में सार्वजनिक स्थानों पर महिला शौचालयों की कमी एक स्थाई समस्या रही है, चाहे वह रेलवे स्टेशन हो, बस अड्डा, औद्योगिक संस्थान, घूमने-फिरने के स्थान, सार्वजनिक अस्पताल या फिर बाज़ार ही क्यों न हों। इस ज़रूरत के प्रति लापरवाह रवैए के साथ ही जुड़ी है मौजूदा शौचालयों की दयनीय स्थिति। वहां गंदगी, बदबू और कचरा होता है लेकिन पानी नहीं होता, इसलिए शौचालयों का इस्तेमाल करना अपने आप में एक भयानक अनुभव से कम नहीं होता। 180 करोड़ की आबादी वाले इस महानगर में पुरुषों के लिए 2849 निशुल्क सार्वजनिक मूत्रालय हैं लेकिन औरतों के लिए एक भी नहीं!

मुहिम की शुरूआत

इस चिंताजनक स्थिति से निपटने के लिए 18 महीने पहले मुंबई के 40 सामुदायिक संगठनों ने एक जुट होकर एक मुहिम की शुरूआत की, जिसका नाम है ''द राइट टू पी'' यानी पेशाब करने का अधिकार। यह अभियान मुंबई महानगर पालिका या बी.एम.सी. पर औरतों के लिए शौचालयों के निर्माण व मौजूदा शौचालयों की स्थिति में सुधार के लिए दबाव बना रहा है।

इस अभियान की प्रणेता संस्था कोरो की सुप्रिया सोनार का कहना है— "इस कोशिश की शुरूआत तब हुई जब पूरे महाराष्ट्र में चलाए जाने वाले हमारे धरातलीय नेतृत्व कार्यक्रम के तहत हर क्षेत्र से एक ज्वलंत मुद्दा उठाने के बारे में सोचा गया। मुंबई में यह मुद्दा महिला शौचालय का था और आज हर कोई इससे जुड़ गया है, चाहे वह काम वाली बाई हो या सब्ज़ी बेचने वाली, डॉक्टर, अध्यापिका या जेंडर विशेषज्ञ हो।"

सार्वजनिक महिला शौचालयों की मांग आज की सबसे बड़ी ज़रूरत है। जिनके अभाव में घर से बाहर निकलने वाली लाखों औरतें प्रतिदिन शारीरिक और मानसिक कष्ट उठा रही हैं। इसके साथ जुड़े हैं गंभीर स्वास्थ्य सरोकार। स्वयं तथा बच्चों को राहत दिलाने के अलावा मासिक धर्म के दिनों में औरतों को पैड बदलने के लिए भी एक साफ़ व सुरक्षित जगह की ज़रूरत होती है। इस सुविधा की कमी क चलते मूत्र मार्ग, प्रजनन मार्ग के संक्रमण सहित अनेक रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। दूसरी ओर कहीं खुले में जाने या पुरुष कर्मी वाले शौचालयों के इस्तेमाल से उनके साथ हिंसा व अपराध की घटनाएं हो सकती हैं।

सोनार कहती हैं, "यह सरासर अन्याय है। जो थोड़े बहुत शौचालय हैं और बी.एम.सी. के अनुसार निशुल्क हैं वहां भी पैसे लिए जाते हैं। किसी इलाके में एक रुपया तो कहीं दो रुपया भी वसूल किया जाता है जबकि वहां निशुल्क होने की तख़्ती लगी होती है।"

आगे की योजना

इन्हीं सभी बातों के मद्देनज़र इस अभियान के भागीदारों ने एक ठोस योजना तैयार की है। आर.टी.आई. द्वारा 2011 में शौचालयों की निश्चित संख्या की जानकारी प्राप्त करने के साथ 129 शौचालयों की व्यक्तिगत रूप से जांच की गई। कार्यकर्ताओं ने 16 रेलवे स्टेशनों पर हस्ताक्षर अभियान चला कर इस मांग के समर्थन में 50,000 हस्ताक्षर एकत्र किए।

हमारी मांग है कि हर दो किलोमीटर की दूरी पर अशक्त महिलाओं की ज़रूरत को ध्यान में रखने वाले निशुल्क, साफ़, सुरक्षित सार्वजनिक महिला शौचालय बनाए जाएं। यह सुविधा मुफ़्त है, यह बताने वाला सूचना पट्ट मुख्य द्वार पर लगा हो। हम यह भी चाहते हैं कि इन शौचालयों का रख-रखाव बी.एम.सी. के हाथ से लेकर महिला मुद्दों पर काम करने वाली संस्थाओं को वित्तीय-सहायता के साथ दे दिया जाए।

हम जानते हैं कि यह सब एक साथ अचानक होना संभव नहीं है इसलिए हमारा सुझाव है कि प्रयोग के तौर पर ऐसे कुछ शौचालय शुरू किए जाएं और फिर इस योजना को नगर नियोजन का हिस्सा बना दिया जाए।

पिछले दो वर्षों में इस मुद्दे की वक़ालत की गई है। नुक्कड़ नाटकों के द्वारा जन चेतना बढ़ाने, रैलियों के ज़रिए जनता और प्रशासन का ध्यान इस ओर खींचने की कोशिशें की गई हैं। महिला रोग विशेषज्ञों को अपने साथ जोड़ कर महिला स्वास्थ्य के ख़तरों को उजागर किया है। वैयक्तिक योजना विशेषज्ञों ने शौचालयों के लिए उचित स्थान और निर्माण के बारे में अपने सुझाव दिए हैं। इसके वित्तीय पक्ष का भी अध्ययन किया गया है।

नतीजे सामने आए

इन सभी कोशिशों के दो अहम् नतीजे निकले हैं। पहला, यह मुद्दा महिलाओं के लिए 2013 की महाराष्ट्र नीति

शौचालय निर्माण

में शामिल कर लिया गया है कि प्रत्येक 20 कि.मी. पर महिलाओं के लिए सार्वजनिक शौचालयों का ब्लॉक बनाया जाए। दूसरा, जेंडर बजट फ़ॉर सैनिटेशन 2013-14 शीर्षक के दस्तावेज़ में बी.एम.सी. ने इसके लिए वित्तीय आबंटन भी किया है। चालू वर्ष में 25 शौचालयों के लिए 75 लाख रुपए दिए गए हैं। दुर्भाग्य से यह रकम बहुत कम है और अभी इस योजना पर काम शुरू नहीं हुआ है।

27 वार्डों में सौ शौचालयों के हिसाब से कुल 2700 शौचालयों की आवश्यकता है जिनके निर्माण की लागत 89.1 करोड़ बैठती है। निर्माण के बाद नियमित रख रखाव के लिए प्रतिवर्ष एक ब्लॉक पर 30,000 रु. का खर्च आएगा। बी.एम.सी. का कुल वार्षिक सफ़ाई बजट 514 करोड़ रुपए है अतः वे यह अतिरिक्त खर्च उठा सकते हैं। धन के अलावा सही जगह के चुनाव की चुनौती भी है।

'द राइट टू पी कैंपेन' अब मुंबई उच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर करने की तैयारी कर रहा है। जनहित याचिका के तर्क का आधार है कि सार्वजनिक शौचालयों का न होना महिलाओं से उनके इज़्ज़त से जीने के तथा स्वास्थ्य के अधिकार के साथ उनके मानवाधिकार भी छीनता है।'

पुनश्चः, 8 मार्च 2015 को मंबई के मेयर ने इस अभियान को उल्लेखनीय सामाजिक कार्य का पुरस्कार दिया और ठीक एक वर्ष बाद 8 मार्च 2016 को अभियान के कार्यकर्ताओं ने मुंबई के मेयर का महिला शौचालय निर्माण का अपना वायदा तोड़ने के लिए पुरस्कार लौटा दिया।

—अभियान जारी है।

विभूति पटेल, *नारीवादी अकादमिक हैं।*

कविता

लड़की हूं मैं, गुड़िया नहीं

कमला भसीन

लड़की हूं मैं, गुड़िया नहीं
ज़िंदगी हूं, ज़हर की पुड़िया नहीं
बोलती हूं, गूंगी नहीं मैं
डोर अपनी औरों के हाथों दूंगी नहीं मैं

अपनी पहचान है और जगह है मेरी
है अपनी कहानी, और जीने की वजह है मेरी
न फूल, न देवी, ना ही हूं किसी की चेरी
इसीलिए सहती नहीं मैं कोई हेरा फेरी

सोचती हूं मैं, देखती हूं सपने
जानती हूं हैं कौन पराये, कौन अपने
हों ज़ुल्म, तो मैं भी लगती हूं तपने
मेरी एक नज़र में, ज़ुल्मी लगते हैं नपने

दंगे फसादों में पड़ती नहीं मैं
बिला वजह लोगों से लड़ती नहीं मैं
सड़कों पर हंगामें करती नहीं मैं
लड़कों जैसे कारनामे करती नहीं मैं

संवारती हूं मैं, बिगाड़ती नहीं
सहलाती हूं मैं, पछाड़ती नहीं
बेवजह औरों को दुःख मैं देती नहीं
जननी हूं, मैं जान लेती नहीं

अब इरादा है लड़कों को भी लड़कियों सा बनाने का
उन में भी सब्र और प्यार पनपाने का
क्या होते हैं जज़्बात उन्हें समझाने का
कैसे बनती है बिगड़ी बात उन्हें सिखलाने का।

कमला भसीन, *जागोरी की संस्थापक सदस्य और नामचीन नारीवादी लेखिका हैं।*

—◆◆◆—

आजकल मैं मन का करती हूं

चित्रा देसाई

आजकल मैं मन का करती हूं
कॉफ़ी के बड़े मग से
हाथों को,
और फ़ैज़ की नज़्मों से
रूह को सेंकती हूं।
हर सुबह—
पेपर में छपी ख़बरों पर
इत्मीनान से बहस करती हूं।
सरसों का साग
और बथुए की रोटी
कभी गुड़ और
हरी मिर्च से कुतरती हूं।

अपनी खिड़की पर
गमलों में बसी खेती को
पानी से सींचती हूं।
शाम को—
आवारगी से घूमते
पेड़ों की कलगी पर
चिड़ियों का कलरव सुनती हूं।
कभी दोपहर में
दोस्तों का हाथ पकड़
अपने गली-मोहल्लों की
बातों से लिपटती हूं।

बचे-कुचे पेड़ों पर
पंछी नीड़ बना पाए
ऐसी कोशिश में शामिल होती हूं।
सांझ ढ़ले—
अपने गांव की मिट्टी को
दूर से ही सहलाती हूं।
मेरे दोस्त कहते हैं—
आजकल मैं कुछ नहीं करती।
क्योंकि—
आजकल मैं मन का करती हूं।

कहानी

छाती तले का लावा

वीणा शिवपुरी

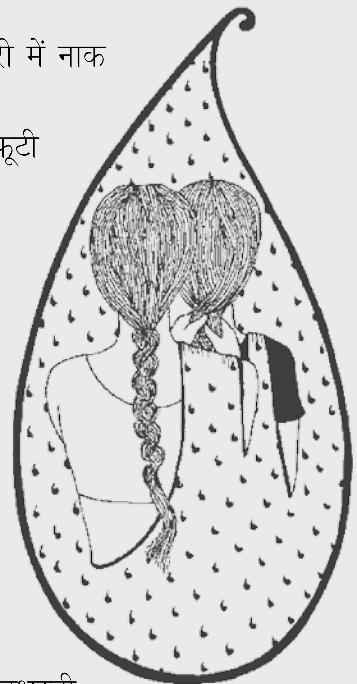

"ज़मींदार होंगे तो हमारे ठेंगे से, बेटी को सोने की करधनी देते तो न बनी। पूरी बिरादरी में नाक कटवा दी हमारी।

— "अच्छी से अच्छी लड़कियां मिल रहीं थीं मेरे अरविन्द को। हमारी ही किस्मत फूटी थी जो पढ़ी लिखी के चक्कर में इन फटीचरों के घर में जा फंसे।"

— "बहूरानी, तुम नहीं जाओगी तो कोई तुम्हारे भाई की शादी नहीं रुक जाएगी। मेरे बेटी दामाद पांच साल बाद आ रहे हैं, घर की बड़ी बहू का यहां रहना ज़रूरी है।"

— "अब सात बजे बहूरानी जी तशरीफ़ ला रही हैं, नौकरी का अच्छा बहाना है। सास घर में चूल्हा झोंके और बहू मटरगश्ती करती घूमे।"

— "ज़रा हाथ पैर बचा कर काम किया करो बहू। तुम्हारे बाप कारूं का खज़ाना नहीं दे गए हमें कि तुम रसोई में देसी घी लुढ़काया करो और हम चुप रहें।"

— "मुझे औरत के टसुओं से सख्त नफ़रत है बड़के की अम्मा। एक बात कान खोल कर सुन लो मैं बीवी के पल्लू से बंधने वाला मर्द नहीं हूं।"

— "कमाने का यह मतलब तो नहीं कि तुम बग़ैर मेरी इजाज़त के जिस-तिस को जो चाहे दे दोगी।"

कितनी ही घटनाओं का कोलाज मेरे मन में बनता बिगड़ता रहता है। एक तस्वीर उभरती है तो एक मिटती है और फिर एक नयी उठ खड़ी होती। हर बार ताने तिशनों की धार अधिक तेज़ और शब्दों का ज़हर कुछ अधिक घातक। इनमे फ़र्क़ सिर्फ़ यही है कि कुछ घटनाएं एकदम ताज़ा हैं तो कुछ मेरे ज़ेहन में समय की परतों के नीचे दबी हुई। कुछ मेरी अपनी ज़िन्दगी में अभी गुज़री हैं तो कुछ मैंने अम्मा के साथ गुज़रती देखी हैं। कभी कभी तो यह बूझना मुश्किल हो जाता है कि कौन सी घटना अम्मा की ज़िन्दगी का हिस्सा है और कौन सी मेरी, कहां अम्मा की कहानी ख़त्म होती है और कहां से मेरी शुरू।

अम्मा— जिनकी की शादी पन्द्रह बरस की कच्ची उम्र में हो गयी थी और मैं चौबीस साल की पढ़-लिखकर नौकरी करती हुई ब्याही गयी थी, लगभग आधी सदी के अंतर पर। ब्याह से पहले अम्मा ने पिताजी की शक्ल तो दूर तस्वीर तक नहीं देखी थी जबकि मैं और अरविन्द महीनों तक साथ-साथ घूमे-फिरे, मिले-जुले फिर भला कैसे मेरी और अम्मा की ज़िन्दगी एक पटरी पर आ गई। क्या आधी सदी में कुछ भी नहीं बदला? परन्तु नहीं, यह सच नहीं है और मेरी और अम्मा की ज़िन्दगी एक पटरी पर कहां चली। मैंने अम्मा को कभी कटु से कटु बात का जवाब देते या प्रतिवाद करते नहीं सुना। जबकि किसी भी तरह का अन्याय या अपमान चुपचाप पी जाना मेरे बस की बात नहीं। कितनी ही बार मन में आता है अपनी धरती समान धीर गंभीर मां को झिंझोड़ कर पूछूं— ये सब तुम कैसे कर पायीं? सभी कड़वाहटों के बावजूद वे सदा मुस्कुराते हुए हम सबकी ही नहीं बल्कि रेवड़ भर ससुराल वालों की सेवा करती रहीं। उस वक्त मेरी उम्र काफ़ी छोटी थी फिर भी मुझे याद है कि दादा दादी, एक अपाहिज छोटे दादा और बाल-विधवा दादी बुआ तो सदा ही रहते थे। उनके अलावा पिताजी के बड़े परिवार के दो-चार बहन बहनोई, भाई भतीजे भी घर में मेहमान बने ही रहते थे। अम्मा घर में सुबह सबसे पहले उठती थीं और रात में सबके सो जाने के बाद ही सोती थीं। हमने उन्हें बीमारी के अलावा कभी बिस्तर पर लेटे नहीं देखा था। सबका खाना पीना, भंडारघर की सार-संभाल, तीन

बच्चों का पालन-पोषण, मेहमानदारी और इन सबके बीच अड़ोसनों-पड़ोसनों के शादी-ब्याह में बन्ने गाने, ढोलक बजाने के अलावा न जाने कौन से अदृश्य फुर्सत के वक्त में इसके उसके नाती पोतों के लिए स्वेटर बुनने से झबले सीने तक का काम कर लेती थीं। छुट्टियों में जो भी बुआ आती, मां के सिर ढेर सारा काम मंढ़ जाती थी।

—"भाभी, अपने ननदोई के लिए फलां बुनाई का पूरी बांह का स्वेटर बना दीजिये।"

— "भाभी, इस बार एक मर्तबान आम का अचार और मीठा लच्छा मेरे लिए भी डाल देना, आप अपना तो डालेंगी ही।"

— "वाह भाभी, इस बार की संक्रांति पर आपने तिल के लड्डू तो भेजे ही नहीं। मेरे ससुर जी खूब याद कर रहे थे। अब जाते समय एक छाबड़ी साथ देना न भूलना।"

जितने लोग उतनी फ़रमाइशें और अम्मा अकेली उन्हें पूरने वाली। बुआएं तो उठकर कभी पानी का गिलास न पकड़ती थीं। दादी का कहना था, "मेरी बेटियां चार दिन को मायके आती हैं तनिक पांव फैलाने को। यहां भी क्या वे लौंडी-बंदियों सी दौड़ती फिरेंगी?"

अम्मा के लिए तो चार दिन का मायके का सुख भी नहीं था। पिताजी की नानाजी से कुछ अनबन हो गयी थी सो बस बारात ले जाने के बाद दोबारा कभी अपनी ससुराल की देहरी पर पांव नहीं रखा। शुरू-शुरू में मां अकेली या छोटे बच्चों को लेकर मायके हो आती थीं परन्तु धीरे-धीरे वो भी बंद हो गया। मैं घर में सबसे छोटी हूं मुझे याद नहीं कि हम कभी अपनी ननिहाल गए हों। वैसे दिमाग़ में सुनी सुनाई जो हल्की सी तस्वीर खिंची है वो एक पुराने समय की बड़ी हवेली, आम के बगीचे और खूब सारे नौकरों चाकरों की है। दादी बुआ ने एक बार बतलाया था कि शादी के दौरान ही पिताजी के किसी बाराती दोस्त ने भंग की तरंग में नानाजी के पहरावे पर कुछ फ़ब्ती कस दी। नानाजी ज़मींदार ज़रूर थे पर पक्के गांधीवादी। हमेशा हाथ की कती मोटी खद्दर का धोती कुरता पहनते थे। जवान गर्म खून के मामाजी को ऐसी ठिठोली कहां बर्दाश्त होती, उन्होंने भी हलवाहे से कहकर भंगेड़ी बाराती के सिर पर बाल्टी भर पानी डलवा दिया। नशा तो खैर उतरा ही, साथ ही एक हंगामा भी हो गया। इधर ससुराल में दादाजी भी अपने वक्त में राजा के कोतवाल रहे और पिताजी थे पुलिस में दरोगा। पुलिसियों का खानदान ऐसा कि नाक पर मक्खी बैठे तो नाक कटा दें। बारात लौटने-लौटने को हो गयी। किसी तरह बड़े बुज़ुर्गों ने बीच में पड़कर सुलह-सफ़ाई करायी और बारात बहू को लेकर लौटी परन्तु वो दिन और आज का दिन, पिताजी ने अपनी ससुराल से कोई नाता ही नहीं रखा। अम्मा अकेली का सम्बन्ध कितने दिन निभता। न हर शादी-ब्याह में जा पातीं न अपनी मर्ज़ी से लेन-देन कर पातीं। बस, धीरे-धीरे वे उधर से कटती गयीं और उन्होंने अपने आपको पूरी तरह से इसी घर में रचा बसा लिया। उनका सुख दुःख, जीना मरना सभी ससुराल के साथ ही जुड़कर रह गया। कुछ बड़े होने पर हमें ज़रूर अजीब सा लगता था कि भरपूर ननिहाल होने पर भी और बच्चों की तरह हम गर्मियों की छुट्टियों में वहां क्यों नहीं जाते। कभी कभार किसी शादी गमी में मिलते भी तो बड़ी औपचारिकता के साथ। परन्तु मुझे याद नहीं कि अम्मा ने कभी हंसी-हंसी में भी पिताजी को इसका उलाहना दिया हो। मां-बाप, भाई-बहन जैसे सगे खून-मांस के रिश्ते क्या कोई बग़ैर मन पर सैकड़ों घाव खाए, इतनी आसानी से काट कर अपनी ज़िन्दगी से अलग कर सकता है? पर अगर अम्मा के मन पर घाव थे तो उन्होंने किसी को उनकी हवा तक न लगने दी और होंठ सीए अपने आप उन्हें सहती रहीं थी। न जाने कैसे! न जाने क्यों!!

अम्मा के मन की समझ भी तो मुझे खुद घाव खा कर ही मिली। बचपन और जवानी की उम्र तो इतनी स्वार्थी होती है कि अपने छोटे-छोटे सुख-दुःख से महत्वपूर्ण और कुछ लगता ही नहीं। फिर अम्मा ने स्वयं कभी कुछ कहा भी तो नहीं। वे तो बस अम्मा थीं, स्कूल से लौटने पर नाश्ता बनातीं, हमारे गुड्डे-गुड़ियों के कपड़े सीतीं, बीमारी में रात भर सिरहाने बैठी माथा सहलातीं, यानी कि हर वक्त ज़रूरत पर मौजूद, काम करने को तैयार। बस इससे ज़्यादा

घर में कभी किसी ने उनके बारे में सोचा ही नहीं। दादी ज़बान की चाबुक से सारे घर पर राज करती थीं, मजाल कि उनकी मर्ज़ी के बिना कोई पत्ता भी खड़क जाये। पिताजी— वे तो घर के भीतरी हिस्से में सिर्फ़ खाना खाने और रात को सोने आते थे। उनका अपना कमरा बाहर मर्दाने की ओर था। मां और पिताजी के बीच हमने कोई राड़ नहीं देखी परन्तु स्नेह की नरमाई और गरमाई भी तो नहीं थी। ऐसे ठन्डे असम्पृक्त रिश्ते की चाह मैंने कभी नहीं की।

"मम्मी, मम्मी... आप यहां अंधेरे में क्या कर रही हैं, ऊपर चलिए ना, बड़ी मामीजी बुला रही हैं। आपकी कोई चाचीजी आयी हैं।"

अनु ने आकर कन्धा झझकोरा तब कहीं जाकर मेरी तन्मयता टूटी। जबसे बैंक से लौटी हूं, बरामदे के इसी कोने में बैठी हूं, पुरानी यादों में डूबी हुई। तीन महीने होने को आये जब से अरविन्द का घर छोड़कर मायके आई हूं। चुपचाप सोच में डूबे रहना मेरी आदत सी बन गयी है। इतनी शिक्षा-दीक्षा, समझदारी, सब कुछ जैसे जीवन के इस मोड़ पर आकर बेमानी हो गये हैं। परिवार के रीति रिवाजों, समाज के कठोर नियमों, आपसी रिश्तों के उलझे ताने-बाने, स्नेह, घृणा, अपमान, क्रोध के चक्रवात— इन सबसे निपटने की शिक्षा तो दी ही नहीं गयी और इसीलिए कई बार मैं अपने आपको कितना अकेला, कितना निरुपाय पाती हूं। ये दो राहें कितनी अजनबी हैं, किसे चुनूं। क्या सही क्या गलत, कौन अपना कौन पराया बस इसी छटपटाहट में अकेली बैठी सोचा करती हूं शायद प्रकाश की कोई किरण दिखाई दे जाये, शायद इस सुरंग से बाहर निकलने का कोई रास्ता मिल जाये।

— "सुना है अब वापिस नहीं जाएगी। सास के मुंह पर झाड़ू फेर कर आई है।"

— "उंह! वो ही जाने उनकी माया।" बैठक में घुसते घुसते दबे स्वर में पूछा गया चाची का दोधारी प्रश्न और भाभी का विद्रूप भरा उत्तर कानों से आ टकराया। कोई नयी बात नहीं है। कचोटता अब भी है पर मन पक्का कर लिया है।

— "नमस्ते, कब आई चाची?" मैंने फीकी मुस्कराहट के साथ कहा।

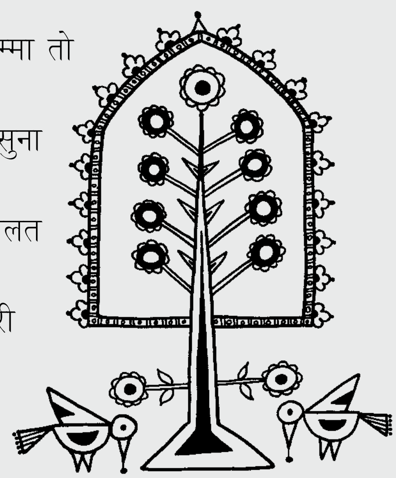

— "अरे आओ आओ सुमंगला बेटी। मैं तो बस अभी आई समझो। तुम्हारी अम्मा तो सुना मन्दिर गयी हैं, सो बहू से ही हाल चाल पूछ रही थी।"

भाभी के चाय लाने के लिए उठते ही चाची मेरे क़रीब खिसकते हुए फुसफुसाई, "सुना है तेरा पति हाथ भी उठावे था, सच है क्या?

राम राम ऐसी सुंदर-सुशील, कमाऊ-धमाऊ घरवाली और यह व्यवहार। क्या हालत कर दी हमारी लाडों की पाली बिटिया की।"

मुखौटे उतारते-बदलते इन बहुरूपियों के नकली चेहरे देख कर अब तो सुन्न पड़ी मेरी चेतना कोई प्रतिक्रिया तक देने में असमर्थ लगती है। बस भीतर ही भीतर लिजलिजी जुगुप्सा से भर जाती हूं मानो बुलबुले फूटते, सड़ते कीचड़ के भंवर में इंच दर इंच धंस रही हूं। आंखों में, कानों में, दिल में, दिमाग़ में वही कीचड़ भरता जा रहा है और मैं बेबस हूं। शुक्र है तभी अम्मा लौट कर आयीं और मैं चाची के प्रश्न का उत्तर देने की बेइज़्ज़ती से उबार ली गयी।

रात के खाने के समय सबके इकट्ठा होने पर वही सवाल उभरा। मुझे मालूम था कि चाची की दी हुई सभी ख़बरें बड़ी भाभी ने बड़के भैया तक पहुंचा दी होंगी। बात उन्होंने ही शुरू की।

— "पिताजी, सुमंगला के ससुराल वाले बिरादरी भर में हम लोगों की क्या क्या बदनामी कर रहे हैं।"

— "क्यों, क्या कह रहे हैं?" पिताजी ने हाथ रोकते हुए पूछा।

— "सुना है इस बार सुमंगला अपनी सास से कह आई— अब लौट के आपकी दहलीज़ पे थूकूंगी भी नहीं।"

— "सुना है क्यों कहते हो बड़के भैया?" मैंने धीमे से कहा, "मुझसे पूछ क्यों नहीं लेते?"

— "चुप रहो। मैं पिताजी से बात कर रहा हूं।"

— "गुस्सा तो बीबीजी की नाक पर रहता है," बड़ी भाभी पल्ले की ओट से फुसफुसाई।

— "हर बार झगड़ा टंटा करके आ जाती है। अरे भई पति ने या सास ने कुछ ऊंचा-नीचा कह भी दिया तो क्या हुआ। बातों से कोई गूमड़े तो नहीं पड़ते।"

— "ठीक कहते हो बड़के भैया। औरतों को इतनी अकड़ शोभा नहीं देती", छोटे भैया ने अपनी राय दी।

दोनों भाभियां बग़ैर कुछ बोले सहमति में सिर हिला रही थीं। मर्दों की बातचीत के बीच आमतौर पर औरतों के बोलने का रिवाज इस घर में भी नहीं है चाहे वह औरत के ही जीवन मरण का प्रश्न हो। निर्णय घर के मर्द ही लेंगे।

पिताजी के चेहरे पर एक भाव आता था, एक जाता था। वे भी आख़िर जीवन भर उसी पितृसत्तात्मक व्यवस्था को ही मानते-पालते आये थे जिसमें औरत की हैसियत जूती बराबर थी, ख़ासतौर पर पत्नी की। परन्तु इकलौती लाडली बेटी के सवाल पर उनके मन का कोई कोमल तंतु चोट खा रहा था। बड़ी मुश्किल से दोनों के बीच संतुलन की कोशिश करते हुए उन्होंने कहा— "वो तो सब ठीक है लेकिन इस बार तो अरविन्द ने हद ही कर दी। शरीफ़ घरों में कोई औरत पर हाथ उठाता है? ये ठीक नहीं।"

— "तो मर्दों से बहस करना क्या ठीक है पिताजी? चार अक्षर पढ़ लिए, चार पैसे कमाने लगी तो पति का मान-सम्मान भूल गयी। आख़िर कोई भी मर्द कब तक ऐसी मुंहज़ोरी बर्दाश्त करेगा, हाथ उठ भी सकता है।"

मुझे एक झटका सा लगा। मैंने चौंक कर बड़के भैया की ओर देखा, ये वो कह रहे थे। पति से सवाल पूछने या उत्तर चाहने का अर्थ है मुंहज़ोरी! उस पर मर्द का हाथ उठ जाये तो आश्चर्य क्या?

— "देखो सुमंगला, लाड़-दुलार सब अपनी जगह है पर समाज के नियम तो मानने ही होंगे," छोटे भैया ने मुझे समझाया।

किसी पौराणिक नाटक के खल पात्रों की भांति इस समय दोनों एक से ही मुखौटे चढ़ाये हुए थे और एक ही भाषा बोल रहे थे। मैं समझ गयी प्रश्न उनकी लाडली बहन की खुशियों का नहीं है, मेरे आत्मसम्मान या मान-अपमान का भी नहीं है बल्कि परिवार में एक औरत द्वारा पुरुष-सत्ता को तोड़ने का है, इसे वे कभी स्वीकार नहीं करेंगे। यह सवाल आज किसी और के घर में उठाया जा रहा है, कल उनके अपने घर में भी उठ सकता है। विद्रोह की इस कोंपल को यहीं कुचल देने में ही उन सब की भलाई है। बस इसीलिए वे एक दूसरे के साथ हैं। फिर छोटे छोटे व्यक्तिगत स्वार्थ भी तो आड़े खड़े हैं।

इतनी देर से मूर्तिवत चुपचाप आंखें बंद किये सुमरिनी के दाने फिराती अम्मा एक दीर्घ निश्वास के साथ सुमरिनी थैली में डाल कर उठ खड़ी हुई और बस इतना भर बोलीं। "उसे कम से कम चैन से दो रोटी तो खा लेने दो।"

"इस बारे में बाद में बात करेंगे," पिताजी ने भी जवाबदेही से बचने के लिए अम्मा की ओट ले ली।

रोटी के कौर मेरे गले में अटक रहे थे। थाली रसोई में रख, हाथ धोकर मैं सीधी अनु के पास आकर लेट गयी। धीमे धीमे गुनगुने आंसुओं की धारें मेरी बंद पलकों को धकेल कर बाहर बहने लगीं। न कोई सिसकी, न कोई सिहरन। अम्मा को भी बचपन में यों ही कई बार देखा था। सारे दिन हंसने मुस्कुराने वाली अम्मा जब भी पूजा में बैठती थीं उनकी बंद आंखों से चुपचाप आंसुओं की धारें ढरका करती थीं। न कोई सिसकी, न कोई सिहरन। मैं छोटी सी बच्ची उनके घुटने से घुटना जोड़े पास बैठी एकटक उनके चेहरे की ओर ताका करती थी। काफ़ी बड़ी उम्र तक मैं भी उसे उनके भक्तिभाव का उद्रेक ही समझती थी पर अब लगता है वह सच नहीं था। शायद वे चौबीस घंटों में सिर्फ़ कुछ क्षणों के लिए पूजा की सूनी कोठरी में अपने कन्हैया के आगे ही, अपना मन खोल पाती थीं। और आदर्श होने का भारी बोझ अपने कन्धों से उतार कर थोड़ी देर के लिए अपनेपन को तरसती एक साधारण सी असुरक्षित औरत बन जाती थीं। भावनाओं, आशाओं और आकांक्षाओं

से भरीपूरी औरत। जिसके मन को चोट भी लगती है और आंसू भी ढरते हैं। वो अम्मा जो आज तक अपने परिवार में ही नहीं दूर दराज़ तक एक मिसाल समझी जाती हैं, घर की बहू बेटियों को उन जैसा बनने का आशीर्वाद दिया जाता है। मुझे आज तक कभी साहस न हुआ कि उनसे पूछ सकूं कि सच क्या था।

खाने के बाद सभी की बैठक जुड़ी है। बातचीत की हल्की भनभनाहट आ रही है। कभी-कभी बड़के भैया की ऊंची आवाज़ सबसे ऊपर सुनाई दे जाती है। नहीं मालूम क्या फ़ैसला कर रहे हैं मेरी किस्मत का।

बड़के भैया सोलह वर्ष के थे जब मैं पैदा हुई थी। वो बनारस में पढ़ते थे और सुना है मैं उनकी बहुत लाडली थी। किसी की क्या मजाल कि उनके सामने सुमंगला को कोई फूल की छड़ी से भी छू जाए। जब भी वे छुट्टियों में घर आते तो मैं तुतलाती हुई उनकी ओर भागती और टांगों से लिपट जाती थी। कभी कभी दादी बड़बड़ाती थीं, "अधेड़ी में पेट्पोंछ्नी पैदा भी हुई तो लड़की, वो भी भाइयों की सिरचढ़ी। कौन उठाएगा इसके नखरे।"

दोनों भाई एकसाथ बोल पड़ते थे। "हम जो हैं।"

मुझे अपने आप पर और अपने निर्णय पर विश्वास था फिर भी हर किसी का विरोध सह पाने की हिम्मत नहीं बटोर पा रही थी। चाहती थी कहीं से कोई तिनके भर नैतिक सहारा ही मिल जाये कि मैं सही हूं। परन्तु घर में किससे ऐसी उम्मीद करती। घर का वातावरण तो तंत्री के कसे तारों सा तनावग्रस्त था। जहां हल्की से छुअन भी टंकार बन कर गूंजती थी। वहां तो मैं किसी तरह अपने को अदृश्य बनाये, बग़ैर कोई उत्पात खड़ा किए, कुछ समय और पा लेना चाहती थी। जानती थी अंततः कोई निर्णय तो लेना ही है। इसी उहापोह में कुछ महीने और बीत गये।

उस दिन सुबह अनु को स्कूल छोड़ती हुई जब बैंक पहुंची तो एकाएक सबकी दृष्टि मेरी ओर घूम गयी। अपने केबिन के भीतर पांव धरते ही वजह समझ में आ गई, वहां अरविन्द बैठे हुए थे। यूं तो बैंक में सभी को मालूम था कि मैं अरविन्द से अलग रह रही हूं परन्तु यहां बीच चौराहे पर अपने संबंधों के बखिये उधेड़े जाने का विचार ही मेरे हाथ पैर ठन्डे कर गया। मातहतों की दबी छुपी मुस्कुराहटें, दुश्शासनी दृष्टियां, मानो मुझे नंगा कर रही थीं। किसी दूसरे की कमज़ोर नस की जानकारी आम आदमी को अजब सा संतोष देती है। कुछ तो इस कारण कि शुक्र है मेरे साथ यह सब नहीं हो रहा और इसके अलावा दूसरे व्यक्ति पर तरस खा पाने की स्थिति एकाएक ही उन्हें कुछ ऊंचा दर्जा दे देती है। बैंक के बीचोबीच शीशे की दीवारों वाले कमरे में बैठ कर किसी बहस की तो गुंजाइश ही नहीं थी और न ही मैं अब हमारे रिश्तों में किसी किस्म की सौदेबाज़ी के लिए जगह देख पा रही थी। सोचने विचारने और आत्मपरीक्षण के लिए पर्याप्त समय मिल चुका था। अरविन्द से मिलकर मन का कोई तार भी नहीं झनका। इस शादी को बर्दाश्त की सीमा तक सफल बनाने के प्रयत्न में ही मैं चौबीस से चौंतीस साल की हो चुकी थी। ऐसी नादान भी नहीं कि अपना भला बुरा न समझ सकूं। इन दस सालों में कितने ही बार उस घर में लौट लौट कर मैंने साफ़ स्लेट पर फिर से नई इबारत लिखने की चेष्टा की परन्तु अब मेरे और अरविन्द के सोचने के ढंग के बुनियादी अंतर को झुठलाया नहीं जा सकता था। मेरे लिए आत्मसम्मान से रहित सिर्फ़ शारीरिक और आर्थिक स्वार्थों पर आधारित सामाजिक समझौते का नाम शादी नहीं है। इस तरह की दमघोंट, ढोंग भरी बेईज़्ज़त ज़िन्दगी जीते जीते मैं अपनी नज़रों में गिर गयी थी। बैंक के पास के रेस्तरां में काफ़ी के प्याले के साथ घर लौट चलने के आग्रह के पीछे मुझे हर महीने ढाई हज़ार रुपए के नुक़सान का ग़म साफ़ नज़र आ रहा था। शहर में मुझे बदनाम कर देने की धमकी ने मेरा फ़ैसला ख़ुद ब ख़ुद कर दिया।

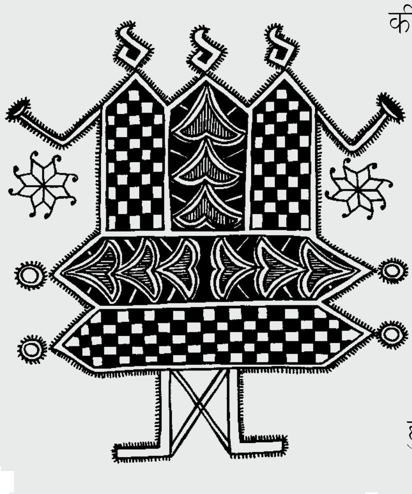

जब से वापिस मायके आई हूं या जबसे मेरे स्थायी हो जाने का अंदेशा हुआ है घर की हंसी ख़ुशी को जैसे ग्रहण लग गया है। जी चाहता है कि

चीख़-चीख़ कर बताऊं इस घर आंगन, इस बरगद की छांव में मैंने चौबीस साल बिताए हैं, अरविन्द के घर बिताये गये वर्षों से कहीं ज़्यादा, फिर यहां से मेरे सब अधिकार, मेरे सम्बन्ध, मेरे जुड़ाव ऐसे कैसे एक झटके में छिन गये, कट गये। हमेशा की तरह अब भी शाम को बैठक में सब इकट्ठा होते हैं परन्तु एक दूसरे से नज़रें चुराते हुए, अखबार के पन्नों के पीछे मुंह छुपाये हुए।

बैंक से लौट कर अपने कमरे में घुसी तो देखा अनु अम्मा की चारपाई के पास फ़र्श पर बैठी बेले की माला गूंथ रही है। मुझे देखते ही चहक कर बोली, "मम्मी, तुम्हारे लिए वेणी बना रही हूं। नानी ने सिखाई है।"

— "तू बैठ, मैं तेरे लिए चाय लाती हूं।" अम्मा गठिये से पिराते घुटनों का सहारा लेकर उठने लगीं।

— "रहने दो अम्मा। थोड़ी देर में मैं ख़ुद ही बना लूंगी।" मैंने अपना बटुआ पलंग पर पटका और दिन भर के थके पैरों से सैंडिल उतारने लगी।

— "अरी तू थकी-हारी आई है, मैं तो सारा दिन बैठी रहती हूं।"

जीवन भर सबकी सेवा चाकरी करते करते, काम करते रहना उनकी आदत बन चुकी है, चाहे अब शरीर साथ नहीं देता। मैंने एक अरसे बाद अम्मा के चेहरे को ध्यान से देखा। सन से सफ़ेद बालों और सैंकड़ों लकीरों से घिरी दो थकी उदास आंखें। अपने सफ़र के लगभग आख़िरी पड़ाव पर खड़ी अम्मा, ठीक मंझधार में जीवन संघर्ष से जूझती लड़ती हुई मैं और अभी इन सबसे अनजान अनुभवहीन भोली अनु— मेरा भूत और भविष्य। तीन पीढ़ियां या शायद एक ही औरत के जीवन के तीन चित्र।

— चाय का प्याला पकड़ कर मैंने हौले से अम्मा को अपने पास पलंग पर बिठा लिया।

— "अम्मा, मैं तलाक़ लेना चाहती हूं।"

अम्मा की पीढ़ी और उन सरीखी औरत के लिए यह एक बड़े सदमे की बात थी परन्तु आश्चर्य कि उन्होंने वैसी कोई प्रतिक्रिया नहीं दर्शायी। धीमे धीमे मेरी पीठ थपथपाते हुए बोलीं, "अच्छी तरह सोच समझ कर क़दम उठाना मुनिया। इस दुनिया में औरत की गलतियों के लिए कोई मुआफ़ी नहीं है।"

— "मैंने सोच समझ लिया है अम्मा, पर तुम क्या कहती हो?" मैंने डरते डरते पूछा।

— "मैं?" एक निश्वास लेकर उन्होंने कहा, "मैंने तो बस यही जाना है बेटी कि आत्मसम्मान का मोल चुका कर ख़रीदी गयी समझौतों भरी ज़िन्दगी में सिवाय पछतावे के और कुछ नहीं रहता।" कभी कुछ न कहने वाली, कोई राय न देने वाली अम्मा ने जैसे एक क्षण के लिए मुझे अपनी राज़दार बना लिया।

बैठक में घुसी तो कुछ कहने की ज़रूरत ही नहीं हुई। वे सब जैसे मेरी ही प्रतीक्षा में बैठे थे। मुझे देखते ही बड़के भैया बोल पड़े।

— "आज अरविन्द मिला था तुमसे?"

— "जी।"

— "और तुमने उसका अपमान करके लौटा दिया।"

— "नहीं तो। मैंने तो सिर्फ़ यही कहा कि अब मेरा वकील ही उनसे बात करेगा।"

— "अच्छा, तो तुमने वकील भी कर लिया है," बड़के भैया ने व्यंग्यात्मक स्वर में पूछा, "और हमें बताने की ज़रूरत भी नहीं समझी।"

— “अब बता रही हूं,” मैंने धीरज से उत्तर दिया।

— “देख रहे हैं पिताजी इस की हिम्मत,” वे अब पिताजी की ओर मुखातिब हुए।

— “बेटी इतनी जल्दबाज़ी मत कर। समय के साथ धीरे धीरे सब ठीक हो जायेगा।” पिताजी ने थकी सी आवाज़ में झूठी दिलासा देने का असफ़ल प्रयत्न किया।

— “पिताजी, मैं अच्छी तरह जानती हूं, इस रिश्ते में कभी कुछ ठीक होने वाला नहीं।”

— “ना हो, हम क्या करें।” घर की रीति को एक झटके में तोड़ कर अब बड़ी भाभी चीखती हुई बोलीं, “हमारी भी जवान बेटियां हैं। कल को हमें उनकी शादी करनी होगी तो किस मुंह से रिश्ता लेकर जायेंगे। इस खानदान की बेटियों के नाम पर धब्बा नहीं लगेगा?”

पिताजी ने चौंक कर बड़ी बहू की तरफ़ देखा और फिर खुद ही नज़रें झुका लीं। बदलते समय और शक्ति संतुलन को वे भी पहचान रहे थे। पौरुष और संपत्ति से अधिकार का सीधा सम्बन्ध है।

— “तो मैं इस खानदान के नाम पर बलि हो जाऊं, यही चाहते हैं आप लोग?” मेरी आवाज़ थर्रा उठी।

— “बेकार का नाटक मत करो सुमंगला। क्या खराबी है अरविन्द में? क्या उसका चाल चलन खराब है? क्या तुम्हें खाना कपड़ा नहीं देता? अब तो उसने तुम पर हाथ उठाने की माफ़ी भी मांग ली है। और क्या चाहती हो तुम?”

— “बड़के भैया...” मैंने डबडबायी आंखों से अपने लाडले भैया की ओर देखा। “मैं सिर्फ़ इस घर में अपने और अनु के रहने के लिए जगह चाहती हूं। मुझे आत्मसम्मान के साथ जीने दीजिये।” शायद मेरे चेहरे में उन्हें कहीं अपनी नन्ही सी मुनिया नज़र आई और वे अपराध भाव से कसमसा कर, सहारे के लिए छोटे भैया और भाभी की ओर देखने लगे।

— “बेटी, तुम अरविन्द के पास लौट जाओ, इसी में घर की इज़्ज़त है। बड़का और छोटा दोनों यही चाहते हैं।” पिताजी ने मानो दोनों की तरफ से फ़ैसला सुना दिया।

— “और आप?” मैंने उनके चेहरे पर दृष्टि गड़ा दी।

— “मैं?” वे चौंक कर बोले और नज़रें चुराते हुए कहने लगे— “मैं अब कितने दिनों का हूं, मैं तुम्हें क्या सहारा दे सकता हूं?” उनकी इस हारी हुई आवाज़ ने मेरे भविष्य के ताबूत पर आख़िरी कील जड़ दी।

— “मैं दे सकती हूं” उस धीमी थरथराती आवाज़ ने जैसे कमरे में धमाका कर दिया। सबकी नजरें दरवाज़े की ओर उठ गयी जहां चौखट का सहारा लिए अम्मा न जाने कब से चुपचाप खड़ी थीं।

सदा से पृष्ठभूमि में रहने वाली अम्मा के शब्दों ने कुछ क्षण के लिए तो सबको शब्द विहीन कर दिया। फिर दोनों भाई झल्लाते हुए लगभग एक साथ बोल पड़े, “ये तुम कह रही हो अम्मा? सठिया तो नहीं गयी हो?”

उनकी बात अनसुनी करते हुए अम्मा ने सीधे पिताजी को संबोधित किया, “सुनते हैं आप, मुनिया मेरे साथ रहेगी। पचास साल से ऊपर खून-पसीना एक किया है मैंने इस घर के लिए। शायद इस पर मेरा भी कुछ हक़ बनता है।”

एक सन्नाटा खिंच गया।

— “अगर मैंने अपने लिए कभी ज़बान नहीं खोली तो इसलिए नहीं कि मुझे अक्ल नहीं थी बल्कि इसलिए कि मेरे पास कोई चारा नहीं था। सुमंगला लाचार नहीं है।”

पिताजी स्तब्ध हो अम्मा को तक रहे थे जिनके साथ ज़िन्दगी गुज़ार कर भी वो उन्हें पहचान नहीं पाए थे। आज जो औरत उनके सामने खड़ी थी वो सद्यजात नहीं बल्कि सदा से उसी चोले में छुपी थी।

मुझे लग रहा था अम्मा को लेकर जीवन भर मेरे मन में उठने वाले सभी सवालों के जवाब मिल गए हैं।

__वीणा शिवपुरी,__ वरिष्ठ लेखिका व हम सबला सम्पादक मंडल की सदस्य हैं।

चौपाल

कायदा तोड़ के एक दिन

जया

सिनेमा, बाज़ार और गेहूं-धुलाई

आज सुमन का छुट्टी का दिन है फिर भी सुमन की आंख सुबह पांच बजे ही खुल गई। बगल में लेटे बीस-बाइस साल के बेटे को हाथ मार कर जगाने लगी, 'अरे मोहित जल्दी उठ, देख घड़ी में पांच बज गए हैं!'

'मां आज संडे है, आज तो सो जाने दो और आप भी सो जाओ।' यह सुनकर सुमन भी सोने लगी। तभी उसका हाथ बेड के नीचे रखे बोरे से टकराया। उसे ध्यान आया कि यह तो गेहूं की बोरी है। इन्हें धोना भी है। अगर आज नहीं धोया तो फिर अगले हफ्ते ही समय मिलेगा। सुमन बिस्तर छोड़ कर नीचे उतर गई। उसका मन तो नहीं कर रहा था लेकिन किसी भी हालत में गेहूं तो धोने ही हैं क्योंकि आटा भी खत्म होने वाला है। सुमन कड़क आवाज में बोली, 'अरे ऐसे कैसे सो जाऊं अगर गेहूं धोकर नहीं डाला तो पानी चला जाएगा। चल मोहित उठ जल्दी। मैं तो जा रही हूं गेहूं धोने।'

वह उठी और सबसे पहले फ्रेश हुई। उसके बाद घर के मंदिर में घी का दीपक जलाया। किचन में चाय बनने के लिए रख दी। सुमन बार-बार चाय की तरफ देखती और गेहूं से भरे बोरे को खोलती। गेहूं को दो बाल्टी में डाल कर उसे पानी से साफ करने लगी। तब तक चाय भी पक कर बर्तन से बाहर आने लगी।

'अरे मोहित अब तो उठ जा देख चाय भी बन गई है।'

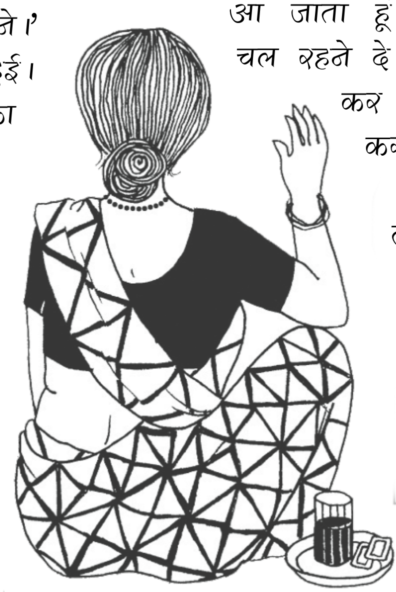

'अरे मां अभी थोड़ी देर में उठ कर पी लूंगा।'

'कब उठेगा, सात बजने वाले हैं। अब धूप भी सिर पर आने वाली है. जल्दी से गेहूं को छत पर डाल कर आ। बस अब गेहूं धुलने ही वाले हैं।'

'मां पहले आप धो तो लो, फिर सारे इकट्ठा ही डाल आऊंगा। ये कह कर मोहित खर्राटे भरने लगा।'

सुमन ने सारे गेहूं धो लिए थे। अब धीरे-धीरे बाल्टी में गेहूं भर कर ऊपर छत पर चढ़ाने लगी। चार बाल्टी में ही वह थक चुकी थी। सुमन ने रूक कर एक चाय की चुस्की ली। चाय पीकर उसे ऐसा लगा कि अब जान में जान आई हो।

नीचे आकर सुमन ने मोटर चलाई और कपड़े धोने बैठ गई। कपड़े धोते-धोते नौ बज गए थे। अब मोहित भी बिस्तर छोड़ ऊपर वाले कमरे में फ्रेश होने के लिए गया। सुमन के अब सारे कपड़े धुल चुके थे। मोहित ऊपर से फ्रेश होकर आया और बोला, 'मां गेहूं कहां है, लाओ जल्दी से डाल कर आ जाता हूं!' 'अब होश आ रहा है गेहूं का, चल रहने दे मैं डाल कर आ गई। जा अंदर बैठ कर चाय पी ले। अपने आप चाय गरम करके पीना।'

'मां आप जब दोगी तभी पीऊंगा नहीं तो नहीं!' हार मान कर सुमन चाय गरम करने लगी। चाय को टेबल पर रख कर मोहित टी.वी. चलाने लगा। सुमन ऊपर वाले कमरे में कपड़ों को रस्सी पर डालने लगी। बाल्टी को नीचे रखकर सामने छज्जे पर बार-बार झांकने लगी। सामने मीरा खाना

बना रही थी। सुमन बोली, 'अरे मीरा खाना बना लिया क्या!'

'क्या आंटी?'

'अरे खाना बन गया क्या?'

'हां बन गया और सारा काम तो पहले ही हो गया।'

'सुमन आंटी, आपकी तो आज छुट्टी होगी। आज के दिन आपको बहुत ही मज़ा आता होगा!'

'अरे कहां आता है। रविवार वाले दिन भी घर का सारा काम होता है। जो रोज़ नहीं कर पाते उसके लिए आज का ही दिन मिलता है।'

सुमन बातें भी कर रही थी और टी.वी. पर भी नज़र मार लेती।

'आज कौन-सी पिक्चर आने वाली है, मीरा?'

'आज एक बजे 'सनम रे' फ़िल्म आयेगी।'

'अच्छा चल ठीक है, इसे भी मैं आज देख कर रहूंगी। अरे सुन आज मेरे फेस पर मसाज कर दियो!'

सुमन ने एक एक करके सारे कपड़े रस्सी पर डाल दिए और नीचे आकर नहाने चली गई। नहाकर बाहर निकली और अपने गीले बालों को तौलिये से सुखा कर दोबारा चाय गरम करने के लिए रख दी। जल्दी से आटा गूंथ लिया, तब तक चाय भी गरम हो गई थी। अब सुमन ने जल्दी जल्दी सब्ज़ी काटी और धोकर पकाने के लिए गैस पर रख दी। दो कप में चाय निकाली। एक कप अपने बेटे को पकड़ा दिया। मोहित ने चाय का कप पकड़ा और सुमन से कहने लगा, 'मां, आप मेरे लिए दो परांठे बना दो, खाली चाय अच्छी नहीं लग रही।' सुमन ने कहा, 'चल अभी पी ले शाम को आलू के परांठे सेंक दूंगी, अभी मुझे मेरा नाटक देखने दे।' कहकर वह कुर्सी पर बैठकर आराम से चाय की चुस्की लेने लगी।

मोहित और सुमन ने चाय पी ली थी। सुमन बर्तन धोते-धोते नाटक का भी मज़ा ले लेती। मोहित ने थोड़ी देर बाद चैनल बदल दिया तब सुमन को बहुत ही गुस्सा आया। वह राशन-पानी लेकर उस पर चढ़ गई, 'लगा रहा है या नहीं उसी नाटक पर। अभी बंद कर दूंगी टी.वी. को। आज ही तो मन करता है फ़ुर्सत से टी.वी. देखने का।'

'पहले आप आराम से खाना बना लो फिर आकर अपने मनपसंद फिल्म, नाटक देखना।' इतना सुनते ही सुमन चुप होकर रोटी बनाने लगी। थोड़ी देर में रोटी बन गई थी। सुमन ने सिर से तौलिया उतारा। दो जगह रोटी-सब्ज़ी निकाल कर टी.वी. के पास बैठ गई और मोहित से रिमोट देने को कहा।

सुमन और मोहित खाना खा ही रहे थे कि तभी मीरा फेशियल करने आ गई। सुमन ने जल्दी से बर्तन धोने के लिए रखे और दरवाज़ा खोल कर मीरा को बैठने के लिए कहा, 'बस अभी मसाज का सामान निकालती हूं।'

सुमन ने साफ़ पानी से मुंह धोकर अलमारी से क्रीम की डिब्बी निकाली। साथ में मेंहदी भी घोल दी। मीरा ने चेहरे पर मसाज किया और सुमन से बोली, 'आंटी आप अपनी आईब्रो भी बनवा लो, कुछ ज़्यादा ही बढ़ गई है।'

'चल आईब्रो भी बना दे।' बीस मिनट में उनकी आईब्रो बन गई। सुमन ने घड़ी की तरफ देखा तो एक बजकर दस मिनट हो रहे थे। उसने मोहित से रिमोट छीन कर फ़िल्म लगा दी। फ़िल्म अभी शुरू ही हुई थी। मीरा बालों में मेंहदी लगाने के साथ फ़िल्म का मज़ा भी ले रही थी। सारे बालों में लगाने के बाद भी मेंहदी बच गई थी।

'आंटी मेंहदी तो बहुत ही ज़्यादा बच गई है, इसका क्या करूं?' सुमन ने कहा, 'चल मेरे हाथ-पैरों में लगा दे। बड़ा ही मन कर रहा था मेंहदी लगाने का।' सुमन को मेहंदी लगाने के बाद मीरा हाथ धोकर टी.वी. देखने लगी। टी.वी. देखते देखते तीन बज गए थे। मीरा भी अब अपने घर चली गई। मोहित टी.वी. बंद करके पढ़ने लगा। सुमन का सिर मेंहदी से काफी ठंडा हो गया था। देखते ही देखते सुमन की आंख लग गई और मोहित भी पढ़ कर सो गया।

लगभग शाम के पांच बजे सुमन उठी। अपने बालों को अच्छे से धोया और अलमारी से अपने लिए नया कुर्ता निकाल बाथरूम में जाकर कुर्ते को पहन लिया। वो जल्दी से अपने बाल को सुखाने लगी तभी उसके पति का फोन आ गया। सुमन ने फोन उठाया और बोली, 'हैलो मोहित के पापा, गांव से कब आ रहे हो! वहां सब ठीक तो है!' सुमन ने फोन टी.वी. पर रख दिया और अलमारी से नेलपेंट निकाल कर अपने हाथ-पैरों में लगाया और बाहर जाकर पटिया पर बैठ गई। थोड़ी देर बाद सोनिया आई, जो सुमन की बहुत ही पक्की दोस्त है। सुमन बोली, 'सोनिया बाज़ार चलोगी!'

'हां बाजार तो जाना ही है, अच्छा अभी रुक मैं जरा अपने बाल बनाकर आती हूं।'

सुमन ने मोहित को जगाया और कहा, 'मैं बाज़ार जा रही हूं! छत पर जाकर सारे गेहूं बीन कर चक्की पर रख आना।'

आज सुमन ने बहुत सारा ज़रूरत का सामान अपने और बेटे के लिए खरीदा। वह कई हफ्तों से सफेद कुर्ता और रोजमर्रा के लिए चप्पल, बालों के लिए रबड़ आदि चीजें खरीदने की सोच रही थी। दोनों ने जूस भी पिया। अब दोनों बाज़ार से घर के लिए रवाना हुयीं। सुमन ने देखा कि घर का गेट बंद है। वह वहीं पटिया पर बैठ गई। तभी अगल-बगल की औरतें भी सुमन की पटिया पर बैठ कर गप्पें लड़ाने लगीं। महिलाएं सुमन से बोली, 'आज ही तो आपके साथ बात करने को मिलता है' पर सुमन बार-बार बीच में रूक कर बोलती, 'पता नहीं कब आयेगा मोहित! चक्की पे गया था अभी तक आया नहीं! मुझे खाना भी बनाना है!' तभी एक लंबी-चौड़ी औरत कड़क आवाज में बोली, 'आ जायेगा, होगा वहीं पर। आटा पिसवाकर घर ही आयेगा, अब वह छोटा थोड़े है जो उसके पीछे-पीछे हमें जाना पड़ेगा। चल सुमन वह छोड़ हमसे बातें कर!' औरतों की गप्पें फिर शुरू हो गई।

__जया,__ ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ रही है। पिछले पांच साल से अंकुर कलेक्टिव की नियमित रियाजकर्ता है।

सर्वव्यापी मातृत्व हक़ और बाल देखरेख प्रावधान

सेजल डांड

भारत माता की जय जय करके है बोल
भारत में मातृत्व सहाय है डांवा डोल

बच्चों और महिलाओं के लिए जीवल का सबसे संवेदनशील और चुनौतीपूर्ण काल होता है गर्भधारण करने से लेकर, प्रसव और प्रारंभिक बाल देखरेख। हमारा संविधान अनुच्छेद 42 में कहता है कि मातृत्व सुरक्षा के लिए राज्य विशेष प्रावधान करे। साथ ही बच्चों के संरक्षण-पोषण का पहलू भी संविधान में है। पर राज्य और समाज दोनों ने इन हक़ों की हमेशा उपेक्षा की है।

भारत में 90 प्रतिशत से अधिक महिलायें असंगठित- अनौपचारिक क्षेत्र में या बिना किसी आर्थिक भुगतान के काम करती हैं। पालक के रूप में इनके बच्चों को बाल देखरेख के लिए ज़रूरी सेवाएं नहीं मिलती हैं। महिलायें एक साथ समानांतर रूप से खेतों, जंगल, पानी की संरचनाओं, निर्माण स्थल या घर पर पानी, ईंधन, चारे, भोजन पकाने, साफ़-सफ़ाई, बच्चों, बुजुर्गों, बीमार सदस्यों की देखरेख के महत्वपूर्ण काम करती हैं।

भारत में असंगठित-अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं को गर्भावस्था के दौरान और प्रसव के बाद बच्चों के प्रारंभिक पालन के लिए वेतन का कोई मुआवज़ा या आर्थिक सहयोग नहीं मिलता है। इससे उनके अपने स्वास्थ्य और शिशु के जीवन पर खतरा बढ़ जाता है। वे अपने परिवार में और नियोक्ता से इस अवस्था में पूरा आराम, पोषण, वजन में वृद्धि, अच्छे स्वास्थ्य और जन्म के बाद बच्चों को 6 महीने के लिए केवल स्तनपान के लिए सहयोग की अपेक्षा ही कर सकती हैं। परिणाम यह है कि 42 प्रतिशत महिलायें गर्भवती होते वक्त दुबली-पतली होती हैं और गर्भावस्था में उनका उचित वजन नहीं बढ़ता है। ऐसे में *मातृत्व सहयोग क़ानून (1961)* न केवल असंगठित-अनौपचारिक क्षेत्र की महिलाओं को उनके हक़ देने के मामले में असफल साबित हुआ है। अफसोस तो यह है कि ज़मीनी सरकारी तंत्र में ही काम करने वाली आशा कार्यकर्ताओं जो खुद महिलाओं को मातृत्व सेवाएं देने का काम करती हैं को भी मातृत्व हक़ नहीं मिलता है।

यह स्पष्ट नहीं है कि सार्वजनिक क्षेत्रों की कुछ गिनी चुनी इकाइयों के अलावा इस क़ानून का कहीं पालन हो भी रहा है कि नहीं। अभी प्रस्ताव है कि इस क़ानून के तहत मातृत्व अवकाश 26 सप्ताह कर

दिया जाए, पर उन 90 फीसदी महिलाओं के बारे में कोई चर्चा नहीं है, जो श्रम करने के बाद भी श्रम क़ानूनों के दायरे से बाहर हैं। यह भी स्पष्ट नहीं है कि मातृत्व अवकाश-हक़ देने की व्यवस्था क्या होगी और आर्थिक प्रावधान क्या होंगे। उदाहरण के तौर पर घरेलू कामगर महिलाओं का कोई एक नियोक्ता नहीं होता है, ऐसे में उन्हें हक़ कौन देगा?

हमारी संसद द्वारा पारित किए गए *राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून* ने एक उम्मीद पैदा की थी। इसमें हर गर्भवती महिला को 6000 रुपए के मातृत्व हक़ का प्रावधान किया गया था। इसके ज़रिये कम से कम पहली बार सभी महिलाओं के लिए मातृत्व हक़ के महत्व को स्वीकार किया गया था। इस प्रावधान को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मातृत्व सहयोग योजना के ज़रिये लागू किया जाना था। परन्तु यह योजना बहुत कमज़ोर हालातों में है। इसमें आर्थिक आबंटन बहुत कम है और इसमें हक़ पाने के लिए बहुत सारी शर्तों का उल्लेख है, जिससे सबसे उपेक्षित महिलायें इस हक़ से वंचित रह जाती हैं। यह एक हक़ आधारित योजना नहीं है, बल्कि यह एक शर्त आधारित नकद हस्तांतरण योजना है। सभी महिलाओं को इस योजना का लाभ देने के लिए 15000 करोड़ रुपए के बजट की ज़रूरत है, किन्तु वर्ष 2016-17 में इसमें केवल 400 करोड़ रुपए का आबंटन किया गया है।

समय उपयोग सर्वेक्षण (2000) से पता चलता है कि एक महिला हर रोज़ औसतन 6 घंटे देखभाल का काम करती है, जिनका कोई भुगतान नहीं होता है। मौजूदा समय में बच्चों की देखरेख का काम पूरी तरह से महिलाओं के ज़िम्मे आता है। देश में मनरेगा समेत अभी नौ ऐसे श्रम क़ानून हैं, जिनमें बाल देखरेख-विकास केंद्र (क्रैच) की स्थापना की जाना चाहिए। इन क़ानूनों में कार्यस्थल पर महिला श्रमिकों की एक निश्चित संख्या होने की शर्त है। पर मालिक अक्सर वास्तविक स्थिति को छिपा देते हैं और महिलाओं के साथ भेदभाव होता रहता है।

एकीकृत बाल विकास सेवाओं के तहत 12वीं पंचवर्षीय योजना में 70 हज़ार आंगनवाड़ी केन्द्र-सह-क्रैच की स्थापना की वायदा किया गया था। परन्तु 3 साल गुज़र जाने के बाद भी ऐसे 500 केन्द्र भी अस्तित्व में नहीं आ पाये हैं। *महिला और बाल विकास मंत्रालय* के एक प्रेस वक्तव्य के मुताबिक राजीव गांधी राष्ट्रीय क्रैच योजना, जो केन्द्रीय अनुदान आधारित कार्यक्रम है, में सब मिलाकर लगभग 5 लाख बच्चे लाभान्वित हो रहे हैं। इस योजना को क्रैच की "ज़रूरत" पूरा करने के लिए सरकार की पहल के रूप में देखा जाना है। सर्वेक्षणों के मुताबिक असंगठित क्षेत्रों में काम कर रही हर 10 में से 6 महिलाओं को क्रैच की ज़रूरत महसूस होती है। क्रैच के बारे में न केवल बजट कम होने और क्रैच की संख्या कम होने की चुनौती है, बल्कि इनके स्वरूप, संरचना और जवाबदेही की स्थिति भी गंभीर है।

कम और लगभग गैर-मौजूद मातृत्व हक़ों और बाल देखरेख के प्रावधानों की कमी को देखते हुए हम मांग करते हैं कि:

नकद मातृत्व हक़

असंगठित क्षेत्र महिला कामगार

1. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून में दर्ज मातृत्व हक़ के प्रावधान को तत्काल लागू किया जाए। जिस केन्द्रीय योजना के ज़रिये इस प्रावधान का क्रियान्वयन होना है, उसका तत्काल विस्तार करके पूरे देश में लागू किया जाए। शुरुआत आदिवासी बहुल ज़िलों से कर दी जानी चाहिए।
2. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून के 6000 रूपए के मातृत्व हक़ प्रावधान को शुरुआत माना जाए और जल्दी ही इसे मज़दूरी वेतन के मुआवज़े के साथ जोड़ा जाए।
3. मातृत्व हक़, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून हर क्षेत्र में सर्वव्यापी और बिना शर्त होना चाहिए। इसे बच्चों के जन्म की संख्या, महिला की उम्र, जैसे भेदभाव की बुनियादी शर्तों से कतई नहीं जोड़ा जाना चाहिए।

पोषण

1. स्थानीय रूप से उपलब्ध भोजन के ज़रिये पूरक पोषण आहार उपलब्ध करवाना व हर महिला को स्थानीय आंगनवाड़ी केंद्र के माध्यम से हर रोज़ गरम, पका हुआ पोषण युक्त भोजन मिलना चाहिए। कई राज्यों में यह व्यवस्था है और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून भी यही हक़ देता है।
2. पोषण आहार कार्यक्रम के लिए अभी आबंटित और खर्च की राशि बहुत कम है। इससे गुणवत्ता और नियमितता पर बहुत नकारात्मक असर पड़ता है। इसके लिए बजट आबंटन बढ़ना चाहिए। साथ ही पोषण आहार कार्यक्रमों में पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, ओड़ीसा राज्यों की तरह फलों और अंडे जैसे खाद्य सामग्रियों का प्रावधान किया जाना चाहिए।
3. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून के तहत सार्वजनिक वितरण प्रणाली के ज़रिये सभी को 10 किलो अनाज, 1 किलो दाल, 1 किलो खाने के तेल का हक़ मिलना चाहिए।

मातृत्व लाभ क़ानून/सर्वव्यापी और व्यापक मातृत्व हक़ों के लिए क़ानून

1. संशोधित मातृत्व लाभ क़ानून में 9 महीनों के पूरे वेतन के साथ सभी महिलाओं के लिए मातृत्व अवकाश का प्रावधान (तीन माह प्रसव के पहले और छः माह प्रसव के बाद) होना चाहिए। आर्थिक तत्व की गणना प्रचलित न्यूनतम मज़दूरी की दर के आधार पर हो।
2. मातृत्व लाभ क़ानून, 1961 में संशोधन करते समय सभी क्षेत्रों और भूमिकाओं (खेत, मज़दूरी, घर, देखभाल का काम, प्रजनन और आर्थिक योगदान वाले काम) में महिलायों के श्रम और योगदान को

सम्मान-पहचान दी जाना चाहिए। इसमें सभी गर्भवती महिलाओं, दत्तक ग्रहण, सेरोगेसी में शामिल महिलाओं को बिना भेदभाव यह हक़ मिलना चाहिए।

3. सरकारी योजनाओं/कार्यक्रमों में कार्यरत सभी महिलाओं (जैसे आशा कार्यकर्ता, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, सहायिकाएं, मध्यान्ह भोजन के रसोइये, मनरेगा में कार्यरत महिलायें आदि) को राष्ट्रीय दिशानिर्देश जारी करके व्यापक मातृत्व हक़ दिए जाने चाहिए। देश के कुछ राज्यों में ये प्रावधान हैं और इनके अच्छे परिणाम भी आये हैं।

क्रैच और बाल देखरेख सुविधाएं

1. क्रैच और स्तनपान के लिए सुविधाएं हर कार्यस्थल और समुदाय (आंगनवाड़ी-सह-क्रैच) में अनिवार्य रूप से उपलब्ध होनी चाहिए। इन तक सभी महिलाओं और बच्चों की पहुंच सुनिश्चित होना चाहिए।
2. मौजूदा श्रम कानूनों के तहत क्रैच व्यवस्था की निगरानी के लिए ठोस और मज़बूत व्यवस्था होना चाहिए ताकि क़ानून का उल्लंघन न हो।
3. क्रैच की सुविधा समुदाय और महिलाओं की ज़रूरत के आधार पर स्थापित की जाना चाहिए। इसके लिए कार्यस्थल पर कार्यरत महिलाओं की संख्या का प्रावधान नहीं होना चाहिए।

आंगनवाड़ी केन्द्र

अभियान और संसाधन

1. मातृत्व हक़ों और क्रैच की व्यवस्था के लिए आर्थिक संसाधन सभी आर्थिक क्षेत्रों से जुटाए जाने चाहिए। यह राज्य की ज़िम्मेदारी है कि सभी बच्चों और महिलाओं को ये हक़ मिलें क्योंकि प्रजनन एक सामाजिक ज़िम्मेदारी है, जिससे परिवार, समाज और राष्ट्र का निर्माण होता है।
2. ऐसे व्यापक अभियान चलाए जाने चाहिए जिनसे यह सक्रिय सन्देश दिया जा सके कि पुरुष भी देखरेख, देखभाल और घरेलू ज़िम्मेदारियों में साझा भूमिका निभाएंगे ताकि महिलाओं का बोझ कम हो।
3. महिलाओं के मातृत्व हक़ों पर स्वास्थ्य-पोषण कार्यक्रमों से जुड़ी कार्यकर्ताओं (आशा, आंगनवाड़ी, ए.एन.एम.आदि) के लिए संवदेनशीलता कार्यक्रम चलाने की ज़रूरत है।

सेजल डांड, *आनंदी गुजरात से जुड़ी नारीवादी कार्यकर्ता हैं।*

अन्त में...

"**कामकाजी** महिलाएं होती हैं मज़बूत पेड़ की तरह। वे मजबूत रही हैं और रहेंगी, झुकेंगी नहीं, दबेंगी नहीं। मेरा अनुभव है कि कामकाजी महिलाओं को रोज़गार, नौकरी या व्यवसाय करने से हिम्मत मिलती है, उनका हुनर मज़बूत होता है। वे अपना निर्णय ले सकती हैं। अपने हाथ में पैसा रहता है तो वे एक मज़बूत लोहे की तरह हो जाती हैं। पैसे-पैसे के लिए किसी की गुलाम नहीं रहतीं। अगर पति व बेटा कुछ गड़बड़ करता भी है तो वे हौसले के साथ डटकर खड़ी रहती है। मैं अपना ही अनुभव बताऊं तो मैंने भी जब व्यवसाय और फिर नौकरी करनी शुरू की थी तो मेरे बच्चे बहुत छोटे थे। छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर काम पर जाना, उनकी पढ़ाई-लिखाई सब देखना कि कहीं कुछ छूट न जाए, बहुत मुश्किल दौर था। मेरी नौकरी लगी उस समय मेरी एक बेटी सवा महीने की थी, पति का सहारा नहीं था, पर कमाने की हिम्मत थी। बच्ची को छोड़कर काम पर जाती थी। पर मैं यह नहीं सोचती थी कि बच्चे घर पर अकेले हैं। सोचती थी तो बस यही कि काम करूंगी तो अपने बच्चों का पेट भर पाऊंगी। मैंने अपनी हिम्मत और मेहनत से काम करके अपना घर चलाया। मैंने कभी हार नहीं मानी। लगातार मेहनत और हिम्मत से आज मैं अपने जीवन में बहुत कुछ कर पाई हूं। अपनी कमाई से दो रोटी चैन की खाती हूं। दुनिया को दुआ नमस्ते करती हूं। सबको प्यार देती हूं। सबकी इज़्ज़त पाती हूं।

मैं आज यही कहना चाहती हूं कि आदमी हर चीज़ भूल सकता है, बच्चे पैदा करता है, अपनी ज़िम्मेदारी निभाना भूल जाता है। पर औरत बच्चों को पालती है, उन्हें पाल-पोस कर बड़ा करती है। मैं मानती हूं कि औरतें आसानी से हिम्मत नहीं हारतीं। वे लड़ती हैं और आगे बढ़ती हैं। मेहनत करने की ठान कर अपना जीवन संवारती हैं। और ज़िन्दगी को सुखी बनाने का हौसला अपने पैरों पर खड़े होने से ही आता है।"

साबरा, *जागोरी में काम करती हैं।*

वजूद

लक्ष्मी

गुम सी हुई हूं लोग कहते हैं
क्या अस्तित्व मेरा मैं जानूं ना
खुद की कोई पहचान नहीं।

मुझसे उम्मीद करते हैं सब
एक मैं ही तो सहारा हूं
कभी बेटी बनीं, तो कभी पत्नी
तो मां कभी सास, दादी, नानी।
मन की बात मन ही न जाने

गुलामगिरी मेरा गहना बना
औरों की खुशियों में खुद को भूल गए
दिल की तड़प कोई जाने ना

ऐसी तूफ़ानी लहर छू गई
संघर्ष की राह निकले कदम
घुट-घुटकर रहना नहीं अब ये ठान लिया।
रंगीन दुनिया में जीना ये जान लिया
अब पीछे मुड़ना गंवारा नहीं।

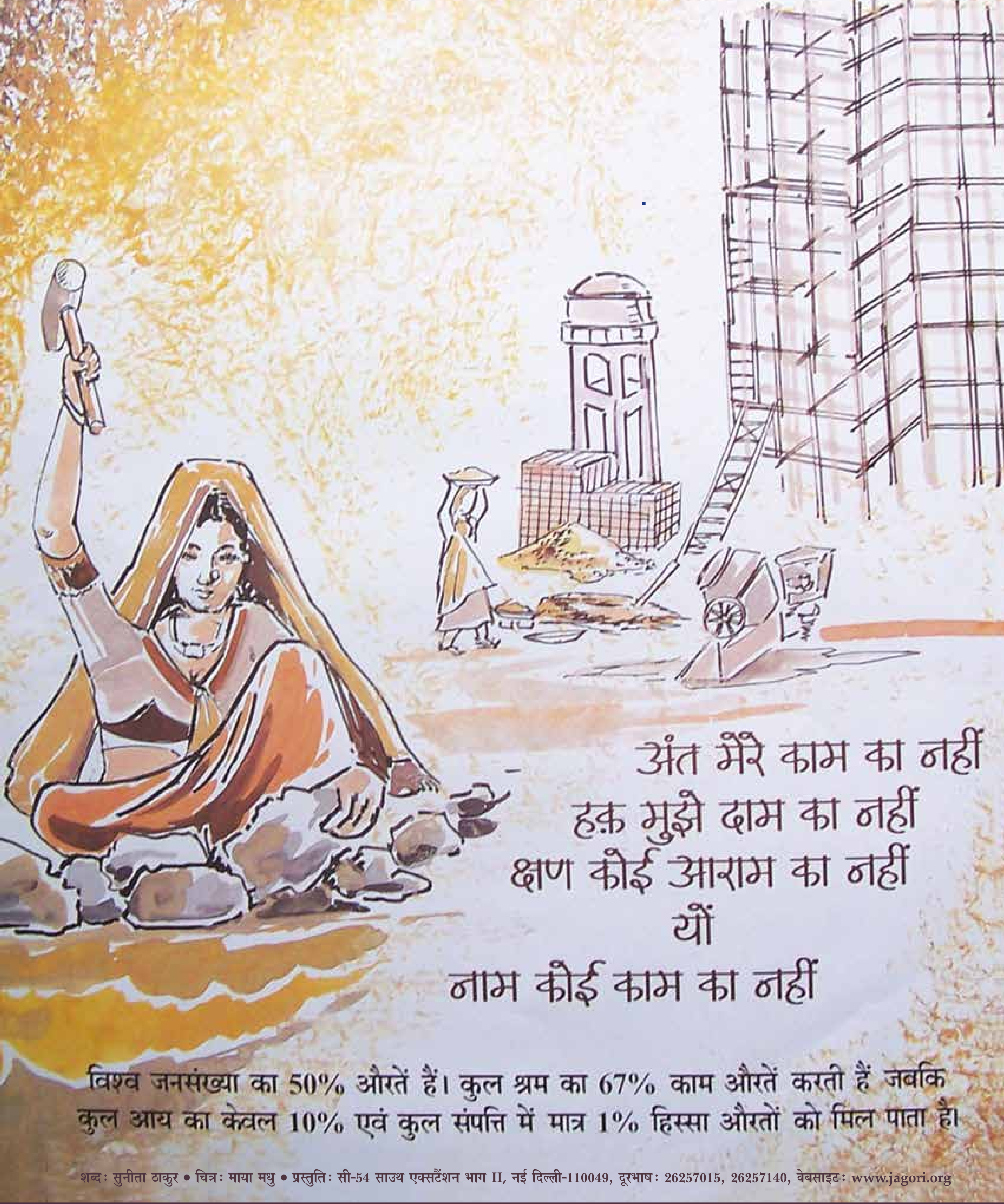

यह पोस्टर www.livingfeminisms.org से लिया गया है। Living feminisms जागोरी के पास अस्सी के दशक से सुरक्षित दस्तावेजों को साझा करने का प्रयास है।